ऋषि प्रसाद

फरवरी १९९६ रूपये : ४.५०

सम्पादक

: ६ अंक : ३८

झाँसी के सत्संग समारोह में पधारे हुए
उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल
श्री मोतीलालजी वोरा
सत्संग सरिता में स्नान करते हुए

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ६
अंक : ३८
९ फरवरी १९९६

सम्पादक : के. आर. पटेल

मूल्य : रू. ४-५०

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
वार्षिक : द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. 30/-
मासिक संस्करण हेतु : रू. 50/-
आजीवन : द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. 300/-
मासिक संस्करण हेतु : रू. 500/-

विदेशों में
वार्षिक : द्विमासिक संस्करण हेतु : US $ 18
मासिक संस्करण हेतु : US $ 30
आजीवन : द्विमासिक संस्करण हेतु : US $ 180
मासिक संस्करण हेतु : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप एवं उमा ऑफसेट, शाहीबाग,
अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया ।
टाइपसेटिंग : विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अहमदाबाद ।

जो साधक तथाकथित अधूरे गुरुओं के जाल से बचकर सच्चे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु को पूर्ण परमात्म-स्वरूप जानकर हृदय के पवित्र भाव से उनकी सेवा-भक्ति करते हैं वे साधक आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । जो सद्गुरु की सेवा करते हैं वे सम्पूर्ण विश्व की सेवा करते हैं । नम्रता और प्रेम से, अहंकार और उकताए बिना की हुई गुरुदेव की सेवा से साधक के हृदयमंदिर में आत्मज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है । - श्रीगुरुगीता

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें ।

म...हा...शि...व...रा...त्रि...

मगन हुआ चित्त राम में, रही न कोई चाह।
जिसको कुछ न चाहिये, वह शाहों का शाह ॥
हारा हृदय गुरु द्वार पर नहीं लोभ-मोह-गुमान।
साक्षी समत्व भाव में, धरे जो हरि का ध्यान ॥
शिव स्वरूप है आत्मा, अजर अमर अविनाशी।
दिव्य दृष्टि से जान लो, परम तत्त्व सुखराशि ॥
वनजारा तू जगत का, यह मेला है संसार ।
चैतन्य तत्त्व ही सार है, बाकी सब असार ॥
राम-रसायन आत्मरस, कर सेवन हर बार ।
अंतर्मुख होकर सदा, दिले दिलबर दीदार ॥
त्रिगुणी माया से परे पंचतत्त्व से दूर।
मन बुद्धि वाणी से परे, व्यापक है भरपूर ॥

❀

हो...लि...का...

हो गई रहमत गुरु की हरिनाम रस को पा लिया।
ध्यान रंग में डुबा दिया निज आत्मभाव में जगा दिया॥
लिज्जत है नाम रस में, पी ले तू बारंबार।
गुरु चरणों में पा लिया है, प्रभु-प्रेम का खुमार॥
कामना को त्याग दे, कर ईश में अनुराग।
गफलत में क्यों सो रहा निजात्म रूप में जाग॥

- जानकी ए. चंदनानी
किरनपार्क, अहमदाबाद ।

❀

अद्वैत होली

होली जली तो क्या जली पापिन अविद्या नहीं जली ।
आशा जली नहीं राक्षसी तृष्णा पिशाची नहीं जली ॥
झुलसा न मुख आसक्ति का नहीं भस्म ईर्ष्या की हुई ।
ममता न झोंकी अग्नि में नहीं वासना फूँकी गई॥
नहीं धूल डाली दम्भ पर नहीं दर्प में जूते दिये।
दुर्गति न की अभिमान की नहीं क्रोध में घूंसे दिये॥
अज्ञान को खर पर चढ़ाकर मुख नहीं काला किया।
ताली न पीटी काम की तो खेल होली क्या लिया ॥

छाती मिलाते शत्रु से सन्मित्र से मुख मोड़ते।
हितकारी ईश्वर छोड़कर नाता जगत से जोड़ते ॥
होली भली है देश की अच्छी नहीं परदेश की ।
सुनते हुए बहरे हुए नहीं याद करते देश की ॥

माजून खाई भंग की, बौछार कीन्हीं रंग की।
बाजार में जूता उछाला, या किसी से जंग की ॥
गाना सुना या नाच देखा, ध्वनि सुनी मौंचंग की।
सुध बुध भुलाई आपनी, बलिहारी ऐसे रंग की ॥

होली अगर हो खेलनी, तो संत सम्मत खेलिये ।
सन्तान शुभ ऋषि मुनिन की, मत संत आज्ञा पेलिये ॥
सच को ग्रहण कर लीजिये, जो झूठ हो तज दीजिये।
सच झूठ के निर्णय बिना, नहीं काम कोई कीजिये॥

होली हुई तब जानिये, संसार जलती आग हो।
सारे विषय फीके लगें, नहीं लेश उनमें राग हो ॥
हो शांति कैसे प्राप्त निश दिन, एक यह ही ध्यान हो ।
संसार दुःख कैसे मिटे, किस भाँति से कल्याण हो ॥

होली हुई तब जानिये, पिचकारी सद्गुरु की लगे।
सब रंग कच्चे जायें उड़, यक रंग पक्के में रंगे॥
नहीं रंग चढ़े फिर द्वैत का, अद्वैत में रंग जाय मन ।
है सेर जो चालीस सो, ही जानियेगा एक मन॥
होली हुई तब जानिये, श्रुति वाक्य जल में स्नान हो ।
विक्षेप मल सब जाय धुल, निश्चिन्त मन अम्लान हो॥
शोकाग्नि बुझ निर्मूल हो, मति स्वस्थ निर्मल शांत हो ।
शीतल हृदय आनन्दमय, तिहुं पाप का पूर्णान्त हो ॥

होली हुई तब जानिये, सब दृश्य जल कर छार हो ।
अज्ञान की भस्मी उड़े, विज्ञानमय संसार हो॥
'हो' मांहिं हो लवलीन सब, है अर्थ होली का यही ।
बाकी बचे सो तत्त्व अपना, आप सबका है वही ॥
भोला ! भली होली भयी, भ्रम भेद कूड़ा बह गया।
नहीं तू रहा नहीं मैं रहा, था आप सो ही रह गया ॥
अद्वैत होली चित्त देकर, नित्य जो नर गायगा।
निश्चय अमर हो जायगा, नहीं गर्भ में फिर आयगा ॥

महाशिवरात्रि व्रत

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक बार कैलास पर्वत पर पार्वतीजी ने भगवान शंकर से पूछा :

कर्मणा केन भगवन् व्रतेन तपसापि वा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुस्त्वं परितुष्यसि ॥

'हे भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग के आप ही हेतु हैं । साधना से संतुष्ट हो मनुष्य को आप ही इसे फल प्रदान करते हैं । अतैव यह जानने की इच्छा होती है कि किस कर्म, किस व्रत या किस प्रकार की तपस्या से आप प्रसन्न होते हैं ?'

प्रत्युत्तर में भगवान सदाशिव कहते हैं :

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथि: स्याच्चतुर्दशी ।
तस्यां या तामसी रात्रि: सोच्यते शिवरात्रिका ॥
तत्रोपवासं कुर्वाण: प्रसादयति मां ध्रुवम् ।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया ॥
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासत: ॥

'फाल्गुन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को आश्रयकर जिस अन्धकारमयी रजनी का उदय होता है उसीको 'शिवरात्रि' कहते हैं । उस दिन जो उपवास करता है वह निश्चय ही मुझे सन्तुष्ट करता है । उस दिन उपवास करने से मैं जैसा प्रसन्न होता हूँ वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्प के अर्पण से भी नहीं होता ।'

उपर्युक्त श्लोक से यह जाना जा सकता है कि इस व्रत का प्रधान अंग उपवास ही है । शिव के समीप जीवात्मा का वास ही 'उपवास' कहलाता है । यथा :

उप-समीपे यो वास: जीवात्मपरमात्मनो: ।

भगवान का ध्यान, उनका जप, स्नान, भगवान की कथा का श्रवण आदि गुणों के साथ वास अर्थात् इन क्रियाओं को करते हुए कालयापन करना ही उपवासकर्त्ता का लक्षण है ।

स्कन्दपुराण में आता है कि :

परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिपरात्परम् ।
न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ।
जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशय: ॥

'शिवरात्रि-व्रत परात्पर है । जो जीव इस शिवरात्रि में महादेव की पूजा भक्तिपूर्वक नहीं करता, वह अवश्य सहस्रों वर्षों तक जन्मचक्रों में घूमता रहता है ।'

पद्मपुराण कहता है :

सौरो वा वैष्णवो वान्यो देवतान्तरपूजक: ।
न पूजाफलमाप्नोति शिवरात्रिबहिर्मुख: ॥

'चाहे सूर्यदेव का उपासक हो चाहे विष्णु का या अन्य किसी देव का, जो शिवरात्रि का व्रत नहीं करता उसको फल की प्राप्ति नहीं होती ।'

स्कन्दपुराण यह भी कहता है :

सागरो यदि शुष्येत क्षीयते हिमवानपि ।
मेरुमन्दरशैलाश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च ॥
चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम् ॥

'चाहे सागर सूख जाय, हिमालय भी क्षय को प्राप्त हो जाय, मन्दर, विन्ध्यादि पर्वत भी विचलित हो जायें पर शिव-व्रत कभी विचलित (निष्फल) नहीं हो सकता ।'

महाशिवरात्रि फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी को ही क्यों मनाई जाती है ? इस संबंध में जो 'कालतत्त्व' का रहस्य जानते हैं उन्हें विदित है कि समय पर कार्य करने से इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है । फाल्गुन के

पश्चात् नये चक्र का प्रारम्भ होता है। रात्रि के पश्चात् दिन तथा दिन के पश्चात् रात्रि होती है। प्रलय के बाद सृष्टि और सृष्टि के बाद प्रलय होता है। इस प्रकार प्रलय के बाद सृष्टि और फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी के बाद वर्षचक्र की पुनरावृत्ति एक ही बात है। वर्षचक्र की पुनरावृत्ति के समय मुमुक्षु जीव परमतत्त्व शिव के पास पहुँचना चाहता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कृष्णचतुर्दशी में चन्द्रमा सूर्य के समीप होता है अतः उसी समय में जीवरूपी चन्द्र का शिवरूपी सूर्य के साथ योग होता है। अतैव फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी को शिवपूजा करने से जीव को इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है।

शिवरात्रि का अर्थ है :

शिवस्य प्रिया रात्रिर्यस्मिन् व्रते अंगत्वेन विहिता तद्व्रतं शिवरात्र्याख्यम्।

'शिव की वह प्रिय (आनन्दमयी) रात्रि जिसके साथ व्रत का विशेष सम्बन्ध है वह व्रत शिवरात्रि व्रत कहलाता है।'

शिवरात्रि के चार प्रहरों में चार बार पृथक्-पृथक् पूजा का विधान भी प्राप्त होता है :

दुग्धेन प्रथमे स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके।
तृतीये तु तथाऽऽज्येन चतुर्थे मधुना तथा॥

'प्रथम प्रहर में दुग्ध द्वारा, द्वितीय प्रहर में दही द्वारा, तृतीय प्रहर में घृत द्वारा तथा चतुर्थ प्रहर में शहद द्वारा शिवमूर्ति को स्नान कराकर उनका पूजन करना चाहिये।'

प्रत्येक प्रहर में पूजन के समय निम्न मंत्र बोलकर प्रार्थना करनी चाहिये :

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

'प्रभो! हमारा कल्याण किसमें है और अकल्याण किसमें है, हम इसका निर्णय करने में असमर्थ हैं। इस तत्त्व को समझने का सामर्थ्य हममें नहीं है। आप क्या हैं, कैसे हैं, यह भी हम नहीं जानते। वेदशास्त्रों में आपके जिस स्वरूप, गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन है, वह भी नहीं जानते। आप जो कुछ भी हों, जैसे भी हों, आपको प्रणाम है।'

प्रभातकाल में विसर्जन के बाद व्रत-कथा सुनकर अमावस्या को यह कहते हुए पारण करना चाहिये :

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥

'हे शंकर! मैं नित्य संसार की यातना से दग्ध हो रहा हूँ। इस व्रत से तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। हे प्रभो! सन्तुष्ट होकर तुम मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करो।'

शिवपूजा का अर्थ शिवनाम का जप-ध्यान करना एवं चित्तवृत्ति का निरोधकर जीवात्मा का परमात्मा (शिव) के साथ योग करना है। जीवात्मा का 'आवरण-विक्षेप' हटाकर पर-तत्त्व 'शिव' के साथ एकीभूत होना ही वास्तविक 'शिवपूजा' है।

शिवरात्रि-व्रत रात्रि को ही क्यों होता है? अब हमें इस प्रश्न का उत्तर ढूँढना है। जिस प्रकार नदी में ज्वार-भाटा होता है उसी प्रकार इस विराट् ब्रह्माण्ड में सृष्टि और प्रलय के दो विभिन्नमुखी स्रोत नित्य बह रहे हैं। मानचित्र में जैसे पृथ्वी के विस्तार को छोटे-से आकार में पाकर उसे पकड़ लेना हमारे लिये सहज हो जाता है, वैसे ही इस विराट् ब्रह्माण्ड में सृष्टि और प्रलय के जो सुदीर्घ स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं, दिवस और रात्रि की क्षुद्र सीमा में उन्हें बहुत छोटे आकार में प्राप्तकर उन्हें अधिगत करना हमारे लिये सम्भव है।

शास्त्रों में भी दिवस और रात्रि को नित्य सृष्टि और नित्य प्रलय कहा गया है। एक से अनेक और कारण से कार्य की ओर जाना ही सृष्टि है और ठीक इसके विपरीत अर्थात् अनेक से एक की ओर तथा कार्य से कारण की ओर जाना ही प्रलय है। दिन में हमारा मन, प्राण और इन्द्रियाँ हमारे आत्मा के समीप से यानी भीतर से बाहर विषय-राज्य की ओर दौड़ती हैं तथा विषयानंद में ही मग्न रहती हैं। पुनः रात्रि में विषयों को छोड़कर आत्मा की ओर, अनेक को छोड़कर एक की ओर, शिव की ओर प्रवृत्त होती हैं।

हमारा मन दिन में प्रकाश की ओर, सृष्टि की ओर,

भेद-भाव की ओर, अनेक की ओर, कर्मकांड की ओर जाता है और पुन: रात्रि में लौटता है अन्धकार की ओर, लय की ओर, अभेद की ओर, एक की ओर, परमात्मा की ओर एवं प्रेम की ओर । दिन में कारण से कार्य की ओर जाता है और रात्रि में कार्य से कारण की ओर लौट आता है । इसीसे दिन सृष्टि का और रात्रि प्रलय की द्योतक है । 'नेति-नेति' की प्रक्रिया के द्वारा समस्त भूतों का अस्तित्व मिटाकर समाधियोग में परमात्मा से आत्मसमाधान की साधना ही शिव की साधना है । इसीलिये रात्रि ही इसका मुख्य काल, अनुकूल समय है । प्रकृति की स्वाभाविक प्रेरणा से उस समय प्रेम-साधना, आत्मनिवेदन, एकात्मानुभूति सहज ही सुन्दर हो उठती है ।

श्रीमद्भगवद्गीता में आता है :

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

(गीता : २.६९)

'सर्व प्राणियों की अर्थात् विषयासक्त संसारी जनों की जो निशा है, उसमें संयमी जगे रहते हैं । आत्मदर्शन-विमुख प्राणिगण जिस जगदवस्था में जागते हैं, मनीषी, आत्मदर्शननिरत योगी के लिये वह निशा है ।'

अत: शिवरात्रि में जागरण करना आवश्यक है । शिवपूजा का अर्थ पुष्प-चन्दन-बिल्वपत्र अर्पित कर शिवनाम का जप-ध्यान करना एवं चित्तवृत्ति का निरोधकर जीवात्मा का परमात्मा (शिव) के साथ योग करना है । जीवात्मा का 'आवरण-विक्षेप' हटाकर पर-तत्त्व 'शिव' के साथ एकीभूत होना ही वास्तविक 'शिवपूजा' है । यही जीवन का ध्येय है । योगशास्त्र के शब्दों में इन्द्रियों का प्रत्याहार, चित्तवृत्ति का निरोध और महाशिवरात्रि व्रत वास्तव में एक ही पदार्थ है । पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, इन चतुर्दश का समुचित निरोध ही सच्ची 'शिवपूजा' या 'शिवरात्रि व्रत' है ।

ईशानसंहिता ग्रन्थ में आता है :

शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।
आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥

'महाशिवरात्रि व्रत सभी पापों का नाश करने वाला है । इस व्रत के अधिकारी चाण्डाल तक समस्त मनुष्य प्राणी हैं, जिन्हें यह व्रत भुक्ति व मुक्ति दोनों ही प्रदान करता है ।'

स्कन्दपुराण में गुरुगीता के अन्तर्गत भगवान् शंकर स्वयं माता पार्वती से कहते हैं :

स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनम् ।
भवेदनंतस्य शिवस्य कीर्तनम् ॥
स्वदेशिकस्यैव च नामचिन्तनम् ।
भवेदनंतस्य शिवस्य चिन्तनम् ॥

अपने गुरुदेव के नाम का कीर्तन अनंतस्वरूप भगवान् शिव का ही कीर्तन है । अपने गुरुदेव के नाम का चिंतन अनंतस्वरूप भगवान् शिव का ही चिंतन है ।

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुस्मृतः ।

'...जो गुरु हैं वे ही शिव हैं, जो शिव हैं वे ही गुरु हैं ।'

गुरु कहो चाहे शिव कहो, वे ही कल्याणकर्त्ता हैं, वे ही मुक्तिदाता हैं । वे लोग धनभागी हैं जिन्हें शिवतत्त्व में जागे हुए, आत्मशिव में रमण करनेवाले जीवन्मुक्त महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त है । इनके सान्निध्य व मार्गदर्शन में साधन-भजन करने वालों की तो हर रात्रि महाशिवरात्रि होती है, हर दिवस पावन और कल्याणकर्त्ता दिवस होता है । ऐसे गुरुभक्तों का अनुभव होता है :

चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

वे लोग धनभागी हैं जिन्हें शिवतत्त्व में जागे हुए, आत्मशिव में रमण करनेवाले जीवन्मुक्त महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त है । इनके सान्निध्य व मार्गदर्शन में साधन-भजन करने वालों की तो हर रात्रि महाशिवरात्रि होती है, हर दिवस पावन और कल्याणकर्त्ता दिवस होता है ।

शिवरात्रि की महिमा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे ।
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम् ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

'हे ईश ! असितगिरि अर्थात् काले पर्वत के समान यदि कज्जल (स्याही) समुद्रपात्र में हो, कल्पवृक्ष की शाखा की उत्तम लेखनी हो और संपूर्ण पृथ्वी कागज हो, उन साधनों को लेकर स्वयं सरस्वती सर्वदा ही लिखती रहें, फिर भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं, तो मैं कौन हूँ ?' (शिवमहिम्नस्तोत्रम्)

ऐसे लाबयान, सच्चिदानंद-स्वरूप, निर्गुण, निराकार, परब्रह्म परमात्मा भगवान् शिव की आराधना का पावन पर्व ही महाशिवरात्रि है । उसे महारात्रि भी कहते हैं, अहोरात्रि भी ।

वर्ष में तीन महारात्रियाँ : जन्माष्टमी की रात्रि, नरक चतुर्दशी की रात्रि तथा शिवरात्रि । ये तीनों महान् रात्रियाँ हैं । जन्माष्टमी को श्रीकृष्ण का प्रागट्य महोत्सव मनाते-मनाते कृष्ण तत्त्व को पाने के पिपासु उस महत्त्वपूर्ण रात्रि का सदुपयोग करते हैं । नरक चतुर्दशी (कालीचौदस) की रात्रि मंत्र-तंत्र को जाननेवालों के लिये, वशीकरण आदि विद्या को जाननेवालों के लिये महत्त्वपूर्ण रात्रि मानी जाती है । तीसरी रात्रि है 'महाशिवरात्रि' । 'शिव' से तात्पर्य है 'कल्याण' अर्थात् यह रात्रि बड़ी कल्याणकारी रात्रि है । इस रात्रि में किया जानेवाला जागरण एवं साधन-भजन अत्यधिक फलदायी माना जाता है ।

इस रात्रि की महिमा के संबंध में 'शिवपुराण' में एक व्याध के जीवन की घटना का उल्लेख मिलता है : एक बार वह व्याध शिकार की तलाश में सारा दिन भूख-प्यास से व्याकुल होकर जंगल में भटकता रहा लेकिन उसे कोई शिकार नहीं मिला । अन्ततः रात्रि में वह एक तालाब के किनारे स्थित बेल-वृक्ष पर अपने साथ कुछ जल लेकर चढ़ गया ताकि रात्रि में तालाब पर जल पीने आनेवाले वन्यप्राणी का वह शिकार कर सके । वह रात्रि महाशिवरात्रि थी तथा जिस बिल्ववृक्ष पर वह चढ़ा था उसके नीचे शिवलिंग स्थापित था । व्याध के शरीर की हिलचाल से अनजाने में ही उस शिवलिंग पर उससे कुछ बिल्वपत्र तथा थोड़ा-सा जल गिर पड़ा ।

व्याध दिन भर से निराहार था । अतः अनजाने में ही उसका उपवास-व्रत हो गया था । शिकार की खोज में रात्रि-जागरण एवं शरीर की हिलचाल से अनजाने में ही जल एवं बिल्वपत्र से भगवान शिव का प्रथम प्रहर का पूजन भी हो गया था । लक्ष्य तो था शिकार करने का किन्तु अनजाने में ही शिवरात्रि का पूजन हो रहा था ।

> ''हे व्याध ! मैं थोड़ी देर पहले ऋतु से निवृत्त हुई हूँ । कामातुर विरहिणी हूँ । अपने प्रिय की खोज में भटक रही हूँ । मैं अपने पति से मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत होऊँगी ।''

एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने पर एक गर्भिणी हिरणी तालाब पर पानी पीने आई । उसे देखकर ज्यों ही व्याध ने धनुष पर तीर चढ़ाकर प्रत्यंचा खींची, हिरणी बोली : ''मैं गर्भिणी हूँ । शीघ्र ही मुझे प्रसव होने वाला है । तुम एक साथ दो जीवों की हत्या करोगे, जो ठीक नहीं । मैं बच्चे को जन्म देकर शीघ्र ही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत होऊँगी, तब मुझे मार डालना ।''

व्याध ने प्रत्यंचा ढीली कर दी और हिरणी झाड़ियों में लुप्त हो गई । इस क्रिया के दौरान रात्रि के दूसरे प्रहर में भी उस व्याध के हाथ से अनजाने में शिवलिंग पर कुछ बिल्वपत्र एवं जल अर्पित हो गया ।

शिकारी का ध्यान तो अपने शिकार पर था । कुछ ही देर में पुनः एक हिरणी उधर से निकली । शिकारी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उसने पुनः धनुष पर तीर चढ़ाया । इस हिरणी ने भी विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि : ''हे व्याध ! मैं थोड़ी देर पहले ऋतु से निवृत्त हुई हूँ । कामातुर विरहिणी हूँ । अपने प्रिय की खोज में भटक रही हूँ । मैं अपने पति से मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत होऊँगी ।''

व्याध ने उसे भी छोड़ दिया । रात्रि के तीसरे प्रहर में भी जल के कुछ छींटों व बिल्वपत्रों द्वारा अनजाने

में शिवपूजन हो गया ।

रात्रि का अंतिम प्रहर बीत रहा था । दो बार शिकार खोकर व्याध का माथा ठनका । वह चिंता में पड़ गया । इतने में एक हिरणी अपने बच्चों के साथ उधर से निकली । शिकारी के लिये तो यह स्वर्णिम अवसर था । उसने पुनः धनुष पर तीर चढ़ाया और जैसे ही तीर छोड़ने को उद्यत हुआ कि हिरणी बोल पड़ी : ''व्याध ! मैं इन बच्चों को इनके पिता के हवाले करके लौट आती हूँ । मुझे इस समय मत मारो ।''

व्याध : ''सामने आये हुए शिकार को छोड़ देना मेरी बुद्धिमानी नहीं है । मैं इससे पहले भी दो बार अपना शिकार खो चुका हूँ । मेरे बच्चे भी तो भूख-प्यास से तड़प रहे हैं ।''

हिरणी : ''जैसे तुम्हें अपने बच्चों की ममता सता रही है, वैसे ही मुझे भी । अतः बच्चों के नाम पर थोड़ी देर के लिये मैं जीवनदान माँगती हूँ । हे जीवन-दाता ! मैं इन्हें इनके पिता के पास छोड़कर तुरन्त लौटने की प्रतिज्ञा करती हूँ ।'' हिरणी का दीन स्वर व्याध के हृदय को छू गया । व्याध ने उस हिरणी को भी जाने दिया ।

शिकार के अभाव में बिल्ववृक्ष पर बैठा-बैठा व्याध विल्वपत्र तोड़-तोड़कर नीचे फेंकता जा रहा था । अतः उसका अंतिम प्रहर (चतुर्थ प्रहर) का भी शिवपूजन अनजाने में हो गया । ऐसा करते-करते प्रभात की आभा पृथ्वी पर छा गई । उसी समय एक हृष्ट-पुष्ट हिरण तालाब के निकट आया जिसे देखकर व्याध उसे मारने के लिये कटिबद्ध हो गया । व्याध की तनी प्रत्यंचा देखकर मृग विनीत स्वर में बोला :

''हे व्याध ! तुमने यदि मुझसे पूर्व आनेवाली तीन हिरणियों एवं छोटे-छोटे बच्चों को मार डाला है तो मुझे भी मारने में विलम्ब न करो, ताकि मुझे उनके वियोग में एक भी क्षण दुःख न सहना पड़े । मैं उनका पति हूँ । यदि तुमने उन्हें जीवनदान दिया है तो मुझे भी कुछ समय जीवन देने की कृपा करो । मैं उनसे मिलकर तुम्हारे सामने आत्मसमर्पण करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हूँ ।''

मृग की बात सुनते ही शिकारी के सामने पूरी रात का घटनाचक्र दुहरा-सा गया । उसने सारी कथा मृग को सुना दी । मृग ने पुनः कहा : ''मेरी तीनों पत्नियाँ जिस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होकर गई हैं, मेरी मृत्यु से वे अपने धर्म का पालन नहीं कर पाएँगी । अतः जिस प्रकार तुमने उन्हें विश्वासपात्र मानकर छोड़ा है वैसे ही मुझे भी जाने दो । मैं उन सबके सहित तुम्हारे सामने शीघ्र ही उपस्थित होता हूँ ।''

अनजाने में शिवरात्रि के उपवास, जागरण एवं चारों प्रहर के शिवपूजन के प्रभाव से व्याध का हिंसक हृदय निर्मल हो गया । उसमें भगवद्भक्ति का उदय हो गया । धनुष-बाण उसके हाथ से सहज ही छूट गये । भगवान् की और अनुकम्पा से उसका हिंसक एवं क्रूर हृदय कोमल हो गया । अपने अतीत के कर्मों को याद करके वह पश्चात्ताप की ज्वाला में जलने लगा ।

थोड़ी ही देर में वह हिरण सपरिवार व्याध के समक्ष प्राणांत के लिये उपस्थित हो गया । वन्य पशुओं की सत्यप्रियता, सात्त्विकता एवं सामूहिक प्रेमभावना को देखकर व्याध को बड़ी ग्लानि हुई । उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई । उस हिरण-परिवार को न मारकर व्याध ने अपने कठोर हृदय को जीवहिंसा से हटाकर सदा के लिये कोमल एवं दयालु बना लिया । यही व्याध भगवद्कृपा से अगले जन्म में राजा बना ।

वन्य पशुओं की सत्यप्रियता, सात्त्विकता एवं सामूहिक प्रेमभावना को देखकर व्याध को बड़ी ग्लानि हुई । उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई ।

❀

शिवभक्त उपमन्यु

भक्तराज उपमन्यु परम शिवभक्त, वेदतत्त्व के ज्ञाता महर्षि व्याघ्रपाद के बड़े पुत्र थे । एक दिन उपमन्यु ने माता से दूध माँगा । घर में दूध था नहीं । माता ने चावल का आटा जल में घोलकर उपमन्यु को दे दिया । उपमन्यु मामा के घर दूध पी चुके थे । अतएव

उन्होंने यह जानकर कि यह दूध नहीं है, माता से कहा : ''माँ ! यह तो दूध नहीं है ।'' ऋषिपत्नी झूठ बोलना नहीं जानती थीं । उन्होंने कहा : ''बेटा ! तू सत्य कहता है, यह दूध नहीं है । नदी-किनारे बनों और पहाड़ों की गुफाओं में जीवन बिताने वाले हम तपस्वी मनुष्यों के यहाँ दूध कहाँ से मिल सकता है ? हमारे तो सर्वस्व शिवजी महाराज हैं । तू यदि दूध चाहता है तो उन जगन्नाथ श्री शिवजी को प्रसन्न कर । वे प्रसन्न होकर तुझे दूध-भात देंगे ।'

माता की बात सुनकर बालक उपमन्यु ने पूछा :

''माँ ! भगवान् श्री शिवजी कौन हैं ? कहाँ रहते हैं ? उनका कैसा रूप है ? मुझे वे किस प्रकार मिलेंगे ? और उन्हें प्रसन्न करने का उपाय क्या है ?''

बालक के सरल वचनों को सुनकर स्नेहवती माता की आँखों में आँसू भर आये । माता ने उसे शिवतत्त्व बतलाया और कहा : ''तू उनका भक्त बन, उनमें मन लगा, उनमें विश्वास रख, एक मात्र उनकी शरण हो जा, उन्हीं का भजन कर । उन्हींको नमस्कार कर । यों करने से वे कल्याणस्वरूप निश्चय ही तेरा कल्याण करेंगे । उनको प्रसन्न करने के लिए महामंत्र है : **ॐ नमः शिवाय ।''**

माता से उपदेश पाकर बालक उपमन्यु शिव को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करके घर से निकल पड़े । वन में जाकर प्रतिदिन **'ॐ नमः शिवाय'** मंत्र के साथ वन के पत्र-पुष्पों से भगवान् शिवजी की पूजा करते और शेष समय मंत्र-जप करते हुए कठोर तप करने लगे । वन में अकेले रहनेवाले तपस्वीं उपमन्यु को पिशाचों ने बहुत सताया, परन्तु उपमन्यु के मन में न तो भय हुआ और न विघ्न करनेवालों के प्रति क्रोध ही । ये पिशाच पहले मुनि थे और मरीचि के शाप से पिशाच योनि को प्राप्त हुए थे । उपमन्यु उच्च स्वर से **'ॐ नमः शिवाय'** मंत्र का कीर्तन करने लगे । इस पवित्र मंत्र के सुनने से मरीचि के शाप से पिशाच योनि को प्राप्त हुए, उपमन्यु के तप में विघ्न करनेवाले वे मुनि पिशाच योनि से छूटकर पुनः मुनिदेह को प्राप्त हो कृतज्ञता के साथ उपमन्यु की सेवा करने लगे ।

तदनन्तर देवताओं के द्वारा उपमन्यु की उग्र तपस्या का समाचार सुनकर सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल भोलेनाथ श्री शंकरजी भक्त का गौरव बढ़ाने के लिये, उनके अनन्यभाव की परीक्षा करने की इच्छा से इन्द्र का रूप धारण कर श्वेतवर्ण ऐरावत पर सवार हो उपमन्यु के समीप जा पहुँचे । मुनिकुमार भक्तश्रेष्ठ उपमन्यु ने इन्द्ररूपी भगवान् महादेव को देखकर धरती पर सिर टेककर प्रणाम किया और कहा : ''देवराज ! आपने कृपा करके स्वयं मेरे समीप पधारकर मुझपर बड़ी कृपा की है । बतलाइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?''

इन्द्ररूपी परमात्मा शंकर ने प्रसन्न होकर कहा :

''हे सुव्रत ! तुम्हारी इस तपस्या से मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ । तुम मुझसे जो वर माँगोगे, वह मैं तुम्हें दूँगा ।''

इन्द्र की बात सुनकर उपमन्यु ने कहा :

''देवराज ! आपकी बड़ी कृपा है, परन्तु मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता । मुझे न तो स्वर्ग चाहिये, न स्वर्ग का ऐश्वर्य ही । मैं तो भगवान् शंकर का दासानुदास बनना चाहता हूँ । जब तक वे प्रसन्न होकर मुझे दर्शन नहीं देंगे, तब तक मैं तप को नहीं छोड़ूँगा । त्रिभुवनसार, सबके आदि पुरुष, अद्वितीय, अविनाशी भगवान् शिव को प्रसन्न किये बिना किसीको स्थिर शांति नहीं मिल सकती । मेरे दोषों के कारण मुझे इस जन्म में भगवान् के दर्शन न हों और यदि मेरा फिर जन्म हो तो उसमें भी भगवान् शिव पर ही मेरी अक्षय और अनन्य भक्ति बनी रहे ।''

''मुझे न तो स्वर्ग चाहिये, न स्वर्ग का ऐश्वर्य ही । मैं तो भगवान् शंकर का दासानुदास बनना चाहता हूँ । जब तक वे प्रसन्न होकर मुझे दर्शन नहीं देंगे, तब तक मैं तप को नहीं छोड़ूँगा । भगवान् शिव को प्रसन्न किये बिना किसीको स्थिर शांति नहीं मिल सकती ।''

इन्द्र से इस प्रकार कहकर उपमन्यु फिर अपनी तपस्या में लग गये। तब इन्द्ररूपधारी शंकर ने उपमन्यु के सामने अपनी ही निंदा करना आरंभ किया। शिव-निंदा सुनकर मुनि को बड़ा ही दुःख हुआ, तभी क्रोध का संचार हो आया और उन्होंने इन्द्रवध करने की इच्छा से अघोरास्त्र से अभिमंत्रित भस्म लेकर इन्द्र पर फेंकी और शिव-निंदा सुनने के प्रायश्चित्तस्वरूप अपने शरीर को भस्म करने के लिये 'आग्नेय धारणा' का प्रयोग करने लगे।

उनकी यह स्थिति देखकर भगवान् शंकर परम प्रसन्न हो गये। भगवान् के आदेश से 'आग्नेयी धारणा' का निवारण हो गया और नन्दी ने अघोरास्त्र का निवारण कर दिया। इतने में ही उपमन्यु ने चकित होकर देखा कि ऐरावत हाथी ने चन्द्रमा के समान सफेद कान्ति वाले बैल का रूप धारण कर लिया है और इन्द्र की जगह भगवान् शिव अपने दिव्य रूप में जगज्जननी उमा के साथ उस पर विराजमान हैं। वे करोड़ों सूर्यों के समान तेज से आच्छादित और करोड़ों चन्द्रमाओं के समान सुशीतल सुधामयी किरणधाराओं से घिरे हुए हैं। उनके शीतल तेज से सब दिशाएँ प्रकाशित और प्रफुल्लित हो गईं। वे अनेक प्रकार के सुन्दर आभूषण पहने थे। उनके उज्ज्वल सफेद वस्त्र थे। सफेद फूलों की सुंदर माला उनके गले में थी। श्वेत मस्तक पर चन्दन लगा था। सुन्दर दिव्य शरीर पर सुवर्ण कमलों से गुँथी हुई और रत्नों से जड़ी हुई माला सुशोभित हो रही थी। माता उमा की शोभा भी अवर्णनीय थी। माता उमा के ऐसे देव-मुनिवन्दित भगवान् शंकर सहित दर्शन प्राप्तकर उपमन्यु के हर्ष का पार नहीं रहा। उपमन्यु गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना करने लगे।

भक्त की निष्कपट और सरल प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने कहा : ''बेटा उपमन्यु ! मैं तुझ पर परम प्रसन्न हूँ। मैंने भली-भाँति परीक्षा करके देख लिया कि तू मेरा अनन्य और दृढ़ भक्त है। बता, तू क्या चाहता है ? यह याद रख कि तेरे लिये मुझको कुछ भी अदेय नहीं है।''

भगवान् शंकर के स्नेहभरे वचनों को सुनकर उपमन्यु के आनंद की सीमा नहीं रही। उसके नेत्रों से आनंद के आँसुओं की धारा बहने लगी। वे गद्गद् स्वर से बोले : ''नाथ ! आज मुझे क्या मिलना बाकी रह गया ? मेरा यह जन्म सदा के लिये सफल हो गया। देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते, वे देव आज कृपा करके मेरे सामने विराजमान हैं। उससे अधिक और मुझे क्या चाहिए। इस पर भी आप यदि देना चाहते हैं तो यही दीजिये कि आपके श्रीचरणों में मेरी अविचल और अनन्य भक्ति सदा बनी रहे।''

भगवान् चन्द्रशेखर ने उपमन्यु का मस्तक सूँघकर उन्हें देवी के हाथों सौंप दिया। देवीजी ने भी अत्यन्त स्नेह से उनके मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् शिवजी ने कहा : ''बेटा ! तू आज अजर, अमर, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानयुक्त हो गया। तेरे सारे दुःखों का सदा के लिये नाश हो गया। तू मेरा अनन्य भक्त है। यह दूध-भात की खीर ले।'' यह कहकर शिवजी अंतर्धान हो गये।

इन उपमन्यु ने ही भगवान् श्रीकृष्ण को शिवमंत्र की दीक्षा दी थी।

❀

शिव नाम का चमत्कार

अम्बाला जिले के भोवा नामक ग्राम की घटना है। एक बार उस ग्राम का नम्बरदार (पटवारी, मुखिया) किसी दूसरे स्थान से अपने ग्राम लौट रहा था। लौटते समय मार्ग में पड़नेवाली बरसाती नदी, जो कि जाते समय सूखी पड़ी थी, वर्षा होने से उमड़ आई। उसे पार करने का कोई उपाय नहीं था, पर घर पहुँचना भी अत्यावश्यक था। बड़े सोच-विचार व चिन्ता में पड़कर वह भगवान शम्भु सदाशिव का स्मरण करने लगा।

नम्बरदार ने एकाग्रचित्त होकर भगवान् की प्रार्थना की। जो भगवान का होकर आर्तभाव से उन्हें पुकारता है उसकी सहायतार्थ वे परम सुहृद अवश्य ही दौड़े चले आते हैं। हमारे शास्त्रों में गजेन्द्र की पुकार, द्रौपदी की पुकार जैसे अनेक भगवद्सहायता के उदाहरण मिलेंगे।

उस समय नम्बरदार के आश्चर्य का ठिकाना ही

न रहा जब एक जटाजूटधारी महात्मा, जो साक्षात् शिव प्रतीत होते थे, उसके सामने आ खड़े हुए और अपनी अहैतुकी कृपा के वशीभूत होकर उसके बिना कुछ कहे ही बोले : ''क्यों बच्चा ! नदी-पार जाना चाहता है ? करीब दो सौ कदम चौड़ी गहरी नदी को, नौका आदि साधन के बिना कैसे पार करेगा ?''

नम्बरदार तो बेचारा आर्तभाव से उन महापुरुष के मुँह की ओर ताकने लगा । उन परम कारुणिक महापुरुष ने पुनः उससे कहा : ''अच्छा, एक काम कर । अपने दोनों हाथ मेरे सामने कर ।''

उसने तुरन्त ही आज्ञा का पालन किया । उसके हाथ पसारने पर उन महात्मा ने उसके बाँयें हाथ में 'शि' और दाहिने हाथ में 'व' लिख दिया और बोले : ''जा, अब दोनों हाथों को देखते-देखते चला जा ।''

बस, महात्माजी के आदेशानुसार वह ऐसे नदी पार करने लगा मानो साधारण मैदान में जा रहा हो । परन्तु जब कोई दस कदम नदी बाकी रह गई तब एकाएक उसकेमन में यह भाव उठा कि 'अरे ! महात्मा ने इस 'शिव'को लिखकर कौन-सी करामात दिखलायी ? यह शिव-नाम तो मेरे माता-पिता बराबर लिया करते थे । शिव के संबंध में कथा-वार्ताएँ भी मैंने खूब सुनी हैं । फिर इस शिव में और कौन-सी विशेषता है ?'

बस, यह भाव उसके अन्दर उठा ही था कि वह नदी में गोते खाने लगा । उसे लगा कि बस, वह डूबने ही वाला है । विवश होकर उसने उन्हीं अशरण-शरण को पुकारा : ''भगवान् ! मेरी रक्षा करो ।'' यह सुनते ही उस पार खड़े महात्मा ने जोर से चिल्लाकर कहा : ''अरे ! तू अपने उस शिव को छोड़कर इसी शिव का ध्यान कर ।'' बस, महात्मा की वाणी सुनते ही उसका उठा हुआ अविश्वास जहाँ-का-तहाँ दब गया और वह अनायास ही नदी पार कर गया ।

जब उस हाथ में लिखे हुए 'शिव' को देखने मात्र से वह व्यक्ति नदी पार कर गया तो शिवतत्त्व में जागृत किसी सद्गुरु से प्राप्त गुरुमंत्र के अहर्निश जप से साधक भवसागर पार कर जाय इसमें क्या आश्चर्य है ? मिल जायें ऐसे कोई आत्मवेत्ता जीवन्मुक्त महापुरुष... जो पहुँचा दें भवपार...

जो दवा से न हो।
वो बात दुआ से होती है ॥
जब कामिल मुर्शिद मिलते हैं।
तो बात खुदा से होती है ॥

❀

प्रभु ! परम प्रकाश की ओर ले चल...
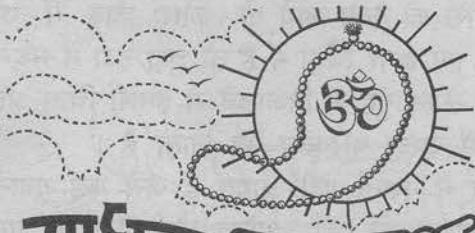
अपने पुराने गुरु की निन्दा करनेवाले एक महानुभाव से कहा गया : ''इस प्रकार निन्दा करने से आपको कोई लाभ नहीं मिलेगा । अभिप्रायों के आदान-प्रदान में त्रिशंकु बन कर लटकने की आवश्यकता नहीं । लुढ़कनेवाला बनकर आमने-सामने टकराने की आवश्यकता नहीं है । तुम अपने हृदय और अपनी आत्मा के व्यवहारों में अपने आन्तरिक विचारों का पता लगाओ । वहाँ से तुम्हें जो नवनीत मिलेगा, वही सच्चा होगा । इसके अतिरिक्त जो भी बकवास करोगे उससे तुम्हारा ही पतन होगा । तुम्हारी इस निन्दा से उन संत की कोई हानि नहीं होगी अपितु तुम्हारा ही सर्वनाश होगा ।''

यह सत्य है कि कच्चे कान के लोग दुष्ट निन्दकों के वाक्जाल में फँस जाते हैं । जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में आत्मशांति देने वाला, परमात्मा से जोड़ने वाला कोई काम नहीं किया है, उसकी बात सच्ची मानने का कोई कारण ही नहीं है । तदुपरान्त मनुष्य को यह भी विचार करना चाहिए कि जिसकी वाणी और व्यवहार में हमें जीवनविकास की प्रेरणा मिलती है, उसका यदि कोई अनादर कराना चाहे तो हम उस महापुरुष की निन्दा कैसे सुन लेंगे ? व कैसे मान लेंगे ?

सत्पुरुष हमें जीवन के शिखर पर ले जाना चाहते हैं किन्तु कीचड़ उछालनेवाला आदमी हमें घाटी की ओर खींचकर ले जाना चाहता है । उसके चक्कर में हम क्यों फँसें ? ऐसे अधम व्यक्ति के निन्दाचारों में पड़कर हमें पाप की गठरी बाँधने की क्या आवश्यकता है ? इस जीवन में तमाम अशान्तियाँ भरी हुई हैं । अशान्तियों में वृद्धि करने से क्या लाभ ?

❀

योगमय जीवन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

शरीर, मन और प्राण का जुड़वे भाइयों जैसा संबंध है । प्राण चंचल हो जाने से मन और शरीर भी चंचल हो जाते हैं । शरीर चंचल होने से मन और प्राण चंचल हो जाते हैं । इसलिए मन, प्राण और शरीर को एकतान करना चाहिए । किसी एक आसन पर बैठकर एकाग्र मन से इष्टमंत्र या गुरुमंत्र का जप करना चाहिए । दृष्टि को नासाग्र रखें अथवा शुद्ध घी से जलते दीपक पर या इष्टदेव, गुरुदेव के चित्र पर स्थिर करें । दीया या चित्र नेत्रों की पुतली की सीध में हों ताकि सिर या नेत्र को ऊपर-नीचे न करना पड़े । इससे मन एकाग्र होगा ।

मन की एकाग्रता से स्थूल प्राण सूक्ष्म होंगे । कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होगी । फलत: शरीर में जहाँ-जहाँ वात, पित्त, कफ के दोष भरे हैं उन्हें शुद्ध करने के लिए स्वत: ही प्राणायाम होने लगेंगे । कभी न किये या न देखे हों, ऐसे आसन अपने-आप ही होने लगेंगे । शरीर भी तालबद्धता से हिलेगा, नाचेगा, कूदेगा ।

प्रतिदिन आठ-दस प्राणायाम करने ही चाहिए । प्राणायाम अर्थात् प्राणों का आयाम-नियमन, प्राणों की विधिवत् तालबद्धता । प्राणायाम करने से प्राण तालबद्ध होकर सूक्ष्म होने लगेंगे । मन के दोष अपने-आप दूर हो जायेंगे ।

हमारे प्राण तालबद्ध नहीं हैं इसीलिए छोटी-छोटी बातों में हम लोगों का चित्त उद्विग्न हो जाता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, रोग, शोक, भय, चिंता यह सब तालबद्धता के अभाव से ही हमें सताते हैं । जैसे बच्चा जब तक छोटा है तब तक उसके मन में कोई आकांक्षा, वासना, समस्या, भय या चिंता नहीं होती । इसलिए उसके प्राण तालबद्धता से चलते हैं और वह खुशहाल रहता है ।

साधारण आदमी और योगी में इसी बात का फर्क होता है कि योगी बड़ी-बड़ी विषमताओं व प्रतिकूलताओं में भी चित्त को विक्षिप्त नहीं करते । ज्ञानवान् क्रोधी व्यक्ति की तरह क्रोध करते हुए दिखते हुए भी क्रोध नहीं करते क्योंकि उन्होंने प्राणायाम करके अपने मन और प्राण को तालबद्ध किया होता है ।

प्राणायाम करने से शरीर में विद्युत-तत्त्व बढ़ता है और शरीर नीरोग रहता है । साधक को कभी-भी नंगे पैर नहीं घूमना चाहिए क्योंकि इससे पैरों को 'अर्थिंग' मिलती है । ध्यान-भजन के प्रभाव से शरीर में जो विद्युत-शक्ति उत्पन्न होती है वह नंगे पैर चलने से पृथ्वी द्वारा खींच ली जाती है । विद्युत-शक्ति चली जाने से शरीर में शिथिलता आ जाती है व शिथिलता रहने से ध्यान-भजन में आनंद नहीं आता । सेवा या काम-काज में भी मन नहीं लगता । जब साधक अपनी जीवन-शक्ति की सुरक्षा करता है और वह जीवन-शक्ति ध्यान-भजन के द्वारा ऊपर के केन्द्रों में आती है तब साधक को लौकिक जगत् में से अलौकिक जगत् में प्रवेश मिलता है ।

> *प्राणायाम करने से शरीर में विद्युत-तत्त्व बढ़ता है और शरीर नीरोग रहता है ।*

लौकिक जगत् में कर्म करके, परिश्रम करके थोड़ा-सा शारीरिक सुख मिलता है और अलौकिक जगत् में भावना का सुख है । आइसक्रीम खाने से, शराब पीने से, फिल्म देखने से या दूसरे लौकिक भोग भोगने से वह सुख नहीं मिलता, जो ध्यान के द्वारा, प्रेमाभक्ति के द्वारा साधक को मिलता है । ज्यों-ज्यों अंदर का सुख बढ़ेगा, त्यों-त्यों बाहर का आकर्षण छूटता जायेगा, वासना कम होती जायेगी । वासना कम होने से, मन की चंचलता कम होने से बुद्धि का परिश्रम कम होकर बुद्धि स्थिर होने लगेगी । **तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता: ।**

ऐसा साधक ज्ञानयोग में प्रवेश करने का अधिकारी हो जायेगा ।

इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है । मन और प्राण की तालबद्धता से अनंतगुनी शक्ति उपजती है ।

पहले के जमाने में लकड़ी के पुल होते थे । कभी-कभी सारी सेना को भी उस पर से गुजरना होता था । सैनिक तो तालबद्धता से चलते हैं 'एक-दो... एक-दो... एक-दो...' करके । तालबद्धता में शक्ति होती है अतः पुल से गुजरते वक्त उस सेना के सेनानायक उनकी तालबद्धता तुड़वाते थे अन्यथा तालबद्धता की वजह से पुल टूट जाने की संभावना रहती थी । कोई तालबद्ध भजन चलता है तो भक्ति के माहौल में मस्ती और अधिक आती है लेकिन जब ताल बेसुरा हो जाता है तो मस्ती रुक जाती है । यह सभी का अनुभव है । तालबद्धता में एक प्रकार का सुख और सामर्थ्य छिपा होता है ।

> *जब साधक अपनी जीवन-शक्ति की सुरक्षा करता है और वह जीवन-शक्ति ध्यान-भजन के द्वारा ऊपर के केन्द्रों में आती है तब साधक को लौकिक जगत् में से अलौकिक जगत् में प्रवेश मिलता है ।*

योगियों का कहना है कि प्राणों पर अगर पूरा प्रभुत्व आ जाये तो सूर्य और चंद्र तक को आप अपनी इच्छानुसार गेंद की तरह उछाल सकते हैं । शास्त्रों में आता है कि सती शांडिली ने सूर्य की गति को रोक दिया था ।

> *योगियों का कहना है कि प्राणों पर अगर पूरा प्रभुत्व आ जाये तो सूर्य और चंद्र तक को आप अपनी इच्छानुसार गेंद की तरह उछाल सकते हैं ।*

जिसने प्राणायाम करके केवली कुम्भक की साधना कर ली है उसके आगे यदि लोग अपनी सांसारिक कामना की मनौती मानें तो वह फलने लगती है । जिसने प्राण को जीत लिया उसने मन को जीत लिया और जिसने मन को जीत लिया उसने पूरे विश्व को जीत लिया ।

प्रतिदिन थोड़ा समय हम श्वास को तालबद्धता से अंदर लें और बाहर निकालें तो बहुत लाभ होगा । जिस समय क्रोध आ रहा होता है उस समय श्वास का ताल अवश्य विकृत होता है । उस समय अगर श्वास को देखा जाये तो क्रोध काबू में आ जायेगा । हम अगर चिंता में हैं तो शुद्ध हवा में नथुनों से श्वास लेकर मुँह से निकालने से हमारी चिंता और उदासी में जरूर परिवर्तन आ जाता है ।

चित्त में पुरानी गंदी आदत है जैसे कई युवानों को हस्तमैथुन की गंदी आदत होती है : यह पाप की, विनाश की पराकाष्टा है । ऐसे युवानों को बदलना है तो उन्हें प्राणायाम सिखाया जाना चाहिए । ऐसे युवकों के हाथ में 'यौवन-सुरक्षा' जैसी पुस्तकें पढ़ने के लिए अवश्य देनी चाहिए ।

आदमी जब अंदर से दुःखी होता है, अशांत होता है तो बाहर से भी दुःख के और अधिक सामान उत्पन्न कर लेता है । साधन-भजन में नियम नहीं होता है, सत्संग नहीं मिलता है तो अंदर का रस प्रगट नहीं होता तब आदमी कामचेष्टा और पापकर्म करता है । ऐसे प्राण की तालबद्धता में थोड़ी-सी सूक्ष्मता ला दें तो उनके पाप कर्म या विकार बदल जाते हैं ।

मन और प्राण प्रकृति के हैं । प्रकृति परमात्मा की है । उस परमात्मा को पाने के लिए मन की एकाग्रता से प्राण तालबद्ध करो अथवा प्राणों की तालबद्धता से मन को एकाग्र करो और उस एक अलख के सुख में, ज्ञान में, सामर्थ्य में, आनंद में आओ... महान् हो जाओ...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मायामात्रं इदं द्वैतम् ।

इस द्वैतरूप जगत् को मायामात्र समझकर अपने शुद्ध-बुद्ध, साक्षी चैतन्य आत्मा को जानने के लिये कोई विरला ही प्रयत्न करता है और ऐसा प्रयत्न करनेवालों में भी कोई विरला ही अपने को दृष्टा-साक्षी भाव में स्थिर कर अपने आत्मस्वरूप को जान लेता है । भगवद्गीता में कहा गया है :

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत: ॥

'हजारों मनुष्यों में कोई ही मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरे को तत्त्व से जानता है ।'

(भगवद्गीता : ७.३)

ऐसे तत्त्वज्ञानी महापुरुष की परिभाषा क्या है ? उनकी पहचान क्या है ? ऐसे ज्ञानी महापुरुषों की कोई परिभाषा नहीं है ।

शुक: त्यागी कृष्ण भोगी जनक राघव नरेन्द्र: ।
वशिष्ठ: कर्मनिष्ठश्च सर्वेषां ज्ञानीनां समान मुक्ता: ॥

ऐसा नहीं है कि वे एकांत में ही रहते हों या उनको बहुत लोग जानते हों, उनके पास लोगों की भीड़ लगी रहती हो । फिर भी ज्ञानी की परिभाषा या पहचान यह है कि जिनके पास बैठने से अधिकारी हृदय में अलौकिक शांति एवं आनंद का अनुभव होता हो वे ज्ञानी हैं । ज्ञानी के पास बैठने से जो आनंद आता है वह निर्विषय आनंद होता है । अहंकार विसर्जित होता है और आत्मा का आनंद मिलता है । यहाँ आनंद लेनेवाला और आनंद एक ही हो जाते हैं, दूसरा नहीं बचता है । ऐसे अपने अंतर्यामी आत्मा से एकत्व का अनुभव करनेवाला, आत्मिक प्रेम की मधुरता को, आत्मानंद को पा लेता है ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : 'जो पुरुष केवल मुझे ही निरन्तर भजता है, उसके लिये मैं सुलभ हो जाता हूँ । वह मुझ अंतर्यामी को जान लेता है ।' फिर दो नहीं रहते हैं, एक ही बच जाता है ।

निरन्तर भजने का अर्थ है - हर क्षण में, हर व्यवहार में अपने आत्मभाव में डटे रहो ।

जिस देश में, जिस वेश में, जिस हाल में रहो
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् कहो...
जिस रंग में, जिस ढंग में, जिस रूप में रहो
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् कहो...
जिस बात में, जिस नात में, जिस जात में रहो
शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवोऽहम् कहो...

> *ज्ञानी की परिभाषा या पहचान यह है कि जिनके पास बैठने से अधिकारी के हृदय में अलौकिक शांति एवं अलौकिक आनंद का अनुभव होता हो वे ज्ञानी हैं । ज्ञानी के पास बैठने से जो आनंद आता है वह निर्विषय आनंद होता है ।*

उसे राम कहो, चाहे कृष्ण कहो, चाहे राधारमण कहो- है तो वही चैतन्य, साक्षी आत्मा । 'राधा' का उल्टा शब्द है 'धारा' । वही तुम्हारे चैतन्यस्वरूप रमण की धारा है जो आँखों के द्वारा देखती है, कानों के द्वारा सुनती है, नाक के द्वारा सूँघती है । 'मैंने देखा... मैंने सुना...' ऐसा जो कहते हैं यह माया है । अच्छा या बुरा देखनेवाले ने देखा, सुननेवाले ने सुना, मैं इनको जाननेवाला चैतन्य आत्मा सबका साक्षी हूँ । मैं कर्त्ता-भोक्ता नहीं हूँ । जो इस शरीर को सत्ता, स्फूर्ति, चेतना देता है, वही व्यापक रूप में सारी सृष्टि को भी सत्ता, स्फूर्ति, चेतनता प्रदान करता है - वह

परमात्मा है । उसके अलावा अन्य कुछ भी नहीं है ।

'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' की खोज में एक बार मीरा वृंदावन गई थीं जीव गोस्वामीजी के वहाँ । मीरा ने जाकर उनका दरवाजा खटखटाया । गोस्वामीजी ने पूछा : ''कौन है ?''

"वृंदावन में पुरुष तो एक ही है, परब्रह्म परमात्मा, श्रीकृष्ण तत्त्व, बाकी सब स्त्री ही हैं तो यह दूसरा पुरुष कहाँ से आया ?"

मीरा ने उत्तर दिया : ''मैं मीरा हूँ ।''

गोस्वामीजी ने कहा : ''हम स्त्री को नहीं आने देते हैं ।''

तब मीरा ने कहा : ''वृंदावन में पुरुष तो एक ही हैं, परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण तत्त्व, बाकी सब स्त्री ही है तो यह दूसरा पुरुष कहाँ से आया ?''

गोस्वामीजी को हुआ कि 'यह तो बड़ी ऊँची समझवाली माई लगती है ।' फिर उन्होंने मीरा को अपने यहाँ ठहरने दिया ।

सचमुच में पुरुष तो एक ही है- परमात्मा । बाकी सब प्रकृतिरूपी स्त्री का, माया का विस्तार है । जो देह को मैं मानता है, जो प्रकृति से, माया से प्रभावित है वह स्त्री है । जो आत्मा को मैं मानता है, वह आत्मा को जान लेता है ।

देह सभी मिथ्या हुई, जगत् हुआ निस्सार ।
हुआ आत्मा से तभी अपना साक्षात्कार ॥

जब आत्मा का साक्षात्कार हुआ तब पता चला कि देह मिथ्या है, जगत् मिथ्या है, देह के संबंध मिथ्या हैं । जब सपना चालू होता है तब सब सच्चा लगता है । लेकिन जब सपने से जाग जाते हैं तब सब मिथ्या मालूम होता है ।

अपने कुल के संस्कारों के अनुसार चाहे श्रीराम को भगवान् मानो या श्रीकृष्ण को, शंकर भगवान् को मानो चाहे अम्बा माता को मानो, पर जब अपने भीतरवाले सच्चिदानंद स्वरूप भगवान् को जान लेते हैं तब किसीका मनाया हुआ भगवान् टिकता नहीं है ।

अपने कुल के संस्कारों के अनुसार चाहे श्रीराम को भगवान मानो या श्रीकृष्ण को, शंकर भगवान को मानो चाहे अम्बा माता को मानो । पर जब अपने भीतरवाले सच्चिदानंदस्वरूप भगवान को जान लेते हैं तब किसीका मनाया हुआ भगवान टिकता नहीं है । हमारे लिये झूलेलाल नहीं टिके, रामकृष्ण के लिये काली माँ नहीं टिकी । जैन धर्म में महावीर जहाँ पहुँचे हैं, वहाँ कोई पहुँचे तो उसके लिये महावीर महावीर नहीं रहते हैं, वे आत्मस्वरूप हो जाते हैं । गीता के धर्म के अनुसार जो चले हैं, उनके लिये कृष्ण कृष्ण नहीं रहते हैं, वे आत्मस्वरूप हो जाते हैं ।

भगवान का आदर यही है कि उनके अनुभव को अपना अनुभव बना दिया जाय । जैसे पिता के चित्र के आगे आरती तो करो लेकिन पिता के वचन को मानकर पिता जैसे हो जाओ, तो पिता ज्यादा राजी होंगे । ऐसे ही ज्ञानी गुरुओं की सेवा-भक्ति तो करो पर उनके उपदेश के अनुसार अपने आत्म-स्वरूप को जान लो तो वे ज्यादा राजी होंगे ।

तुलसीदासजी ने कहा है :

राम भगत जग चारि प्रकारा ।
सुकृतिन चारहुँ अनघ उदारा ॥
चहुँ चतुरन कर नाम आधारा ।
ग्यानी प्रभुहिं बिसेष पियारा ॥

'मैं कौन हूँ ' इस विचार को, इस प्रश्न को मन में बार-बार उठाओ और उसका उत्तर खोजते रहो तो ज्ञानी गुरुओं की बातें समझ में आने लगेंगी । जिसे तुम 'मैं' कह रहे हो वह क्या है ? माता-पिता ने दाल-रोटी खायी उससे रज-वीर्य बना, उससे तुम्हारा यह शरीर बना । तुम पिता के शरीर से पसार हुए और माता के शरीर में तुम्हारा विकास हुआ तो तुम दाल-रोटी का रूपान्तर तो हो । देह की दृष्टि से तो दाल-रोटी हो क्योंकि शरीर को 'मैं' मानते हो । वास्तव में इस दाल-रोटी को (शरीर को) ताजा रखनेवाले, शरीर को चेतना

देनेवाले तुम चैतन्य हो । तुम विचार करो कि 'दाल-रोटी से मनुष्य बनानेवाला मैं बादशाह हूँ... भगवान हूँ।' दाल-रोटी को तुमने मनुष्य की आकृति दी, तुम इतने चमत्कारी हो। तुम्हारे अंदर कितना सामर्थ्य है ! लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि तुम दाल-रोटी को (शरीर को) ही 'मैं' मानते हो। इसे कहते हैं अज्ञान ।

ज्ञानी गुरुओं की सेवा-भक्ति तो करो पर उनके उपदेश के अनुसार अपने आत्म-स्वरूप को जान लो तो वे ज्यादा राजी होंगे ।

यह अज्ञान मिटाना है तो निरंतर सावधान रहो । चल रहे हो तब चिंतन करो : 'शरीर के पैर चल रहे हैं... मन के संकल्प उठ रहे हैं... बुद्धि के निर्णय बदल रहे हैं... उन सबको सत्ता देनेवाला अंतर्यामी चैतन्य मैं हूँ । हरि ॐ... हरि ॐ... पाप-ताप को हरनेवाला मैं हूँ... हरि ॐ... हरि ॐ...' भोजन करते हो तो देखो : 'पाँचों अंगुलियाँ मिल जाती हैं, ग्रास को उठाती हैं... अंगुलियों ने ग्रास को उठाया, पर सत्ता मन की मिली... निर्णय बुद्धि ने किया... बुद्धि को निर्णय लेने की सत्ता चिदावली ने दी... चिदावली को चेतना उस चैतन्य परमात्मा ने दी... अब गले को वही चेतना दे रहा है... पेट को भी वही चेतना देकर भोजन हजम करवाता है... उसकी सत्ता से शरीर चलता है... माया उसकी दासी है, उसकी चेतना लेकर चलती है ।' ऐसा चिंतन, करके भोजन करोगे तो तुम्हारे लिये साधना हो जाएगी ।

ऐसी सतत सावधानी ही साधना है । कोई भी फल-फूल हो या मेवा-मिठाई आदि जो कुछ भी हो, उन सबका मूल प्रकृति है । प्रकृति का कारण महत्तत्त्व और महत्तत्त्व का कारण परब्रह्म परमात्मा है । तो सबका मूल परब्रह्म परमात्मा है । जैसे तुम एक ही हो पर स्वप्न में सब कुछ तुम ही बन जाते हो । स्वप्न में तुम अगर ट्रेन में कहीं जा रहे हो तो स्टेशन, स्टेशन पर पेसेन्जर, फेरिये, कुली, टिकिट मास्टर, चायवाला, नास्तावाला सब तुम बन जाते हो और उस समय वे अनेक रूप सच्चे भी लगते हैं पर एक खुद का पता नहीं होता है । जागने पर स्वप्न नहीं रहता है, अनेक रूप में दिखनेवाली माया नहीं रहती है, वह माया बदल जाती है । लेकिन स्वप्न देखनेवाला स्वप्न के समय भी मौजूद था, स्वप्न के पहले भी मौजूद था और स्वप्न के बाद भी मौजूद रहता है ।

ऐसे ही सृष्टि का दृष्टा पहले भी था, अभी भी है और बाद में भी रहेगा । वही कानों के द्वारा सुनता है, आँखों के द्वारा देखता है, जीभ के द्वारा चखता है । यह शरीर नहीं रहेगा तब भी वह दृष्टा मौजूद रहेगा । 'वही आत्मा है... वही मैं हूँ...' ऐसा जो चिंतन करते हैं वे शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त कर लेते हैं । उनके लिये कुछ भी करना बाकी नहीं रहता है । यह आत्मज्ञान ऐसा महिमावान है ।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय: ॥

'इस संसार में उस पुरुष का न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है । संपूर्ण प्राणियों में भी इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का संबंध नहीं रहता ।' (फिर भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं ।) (भगवद्गीता : ३.१८)
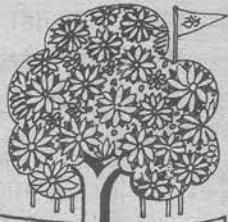
(पृष्ठ १७ का शेष)

क्या वह चट्टान उसके एक हथौड़ा मारने से टूटी है ?... नहीं । हमारे हथौड़े की हजार चोटों ने पूर्वभूमिका बनाकर दी और आखिरी हथौड़ा मारने से परिणाम आया ।

इसी प्रकार भजन करते हो, साधना की राह पर जाते हो और जीवन में विशेष परिवर्तन कुछ दिखे नहीं, फिर भी ध्यान-भजन नहीं छोड़ना चाहिये । हमें जगन्नियंता परमात्मा ने स्वीकारा है इसलिये हमें सत्संग में रुचि हुई है । अत: सत्संग का अत्यधिक आदर करो । संतों के वचनों में श्रद्धा, विश्वास रखकर जीवन का सूर्य अस्त हो जाय, उसके पहले जीवनदाता का अनुभव हो जाय, ऐसे ही प्रयत्न करने चाहिये ।

❀

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हे मानव ! तू अपने भाग्य का स्वयं विधाता है । तू नकारात्मक, फरियादात्मक अथवा निराशायुक्त विचार कभी मत करना ।

जो मंजिल चलते हैं, वे शिकवा नहीं करते ।
जो शिकवा किया करते हैं, वे पहुँचा नहीं करते ॥

जिसे महानता की ऊँचाइयों को छूना है, उसके मन में फरियाद नहीं होनी चाहिये । फरियादात्मक विचारों से ऊँची यात्रा तय नहीं हो सकेगी । जिसके विचार फरियादात्मक हैं, वह सब जगह फरियाद पैदा करेगा तथा जिसके विचार धन्यवादात्मक हैं, वह सर्वत्र प्रसन्नता ही उत्पन्न करेगा । कैसी भी परिस्थिति आवे, प्रसन्नता या फरियाद पैदा करना अपने हाथ की बात है । प्रकृति तो अपनी लीला खेलती ही है ।

जिसे महानता की ऊँचाइयों को छूना है, उसके मन में फरियाद नहीं होनी चाहिये । फरियादात्मक विचारों से ऊँची यात्रा तय नहीं हो सकेगी ।

दो संन्यासी चतुर्मास की यात्रा पूरी करके अपने गाँव पहुँचे । उन्होंने अपनी कुटीर देखी तो आँधी-तूफान द्वारा उसकी छत का आधा हिस्सा टूट चुका था । उनमें एक नकारात्मक विचारों का युवा संन्यासी था और दूसरा धन्यवादात्मक विचारों का बूढ़ा संन्यासी था ।

युवा संन्यासी कहने लगा : ''हे प्रभु ! तू है कि नहीं ? हमको संदेह होता है क्योंकि पापियों के चार-पाँच मंजिले मकान तुझे न दिखे, हमारा झोपड़ा ही दिखा । हमने तेरा भजन किया, तेरे नाम की माला घुमायी और तुझे पाने के लिये संन्यास लिया फिर भी तू हमारे झोपड़े की रक्षा नहीं कर सका ? अब इस टूटे हुए झोपड़े में कैसे रहेंगे ? जो तेरा भजन करे वह दुःख भोगे और जो कपट-दाँव करे वह मौज करे, यह कहाँ का न्याय हुआ ?'' ऐसे फरियादात्मक विचार करके वह निराश हो रहा था ।

उधर वह वृद्ध संन्यासी आकाश की ओर दृष्टि डालकर हँसते-हँसते कहने लगा : ''वाह प्रभु ! तू कितना दयालु है ! तूने जरूर आँधी-तूफान का रूख बदला होगा अन्यथा हमारे झोपड़े की क्या ताकत कि वह टिक सके ? पूरा झोपड़ा टूटना होगा लेकिन तूने तूफान का रूख दूसरी दिशा में मोड़कर हमारा आधा झोपड़ा तो बचा लिया है । केवल आधा हिस्सा ही टूट पाया । यह भी अच्छा ही हुआ क्योंकि उस टूटे हुए हिस्से से हम आकाश में तारों व चाँद की चाँदनी को देखकर आनंद ले सकेंगे । बरसात की रिमझिम देखकर भीतर की प्रसन्नता बढ़ा सकेंगे ।''

वह आनंद में आकर प्रभु को कहता है : ''हे प्रभु ! तू कितना करुणामय है ! हम माता के गर्भ से बाहर आये तो तूने माता के शरीर में दूध बनाया । दूध भी ऐसा कि न अधिक फीका, न अधिक मीठा । दूध फीका होवे तो भाता नहीं और अधिक मीठा होवे तो बीमारी हो जाय । एकदम ठंडा नहीं और अधिक गरम भी नहीं । न सम्हालने की झंझट न बिगड़ने की चिन्ता । वाह प्रभु ! तेरी लीला अपरम्पार है... तेरी महिमा अपरम्पार है... तू कितना दयालु है... !' इस तरह से प्रभु को धन्यवाद देते हुए वह वृद्ध संन्यासी आनंद-विभोर हो रहा था ।

घटना तो एक ही घटी लेकिन युवा संन्यासी ने दुःख और चिन्ता पैदा की जबकि वृद्ध संन्यासी ने उसी बात का आनंद लिया तथा रात भर शांति से सोकर प्रभात को प्रभु-मस्ती में मस्त रहा ।

उधर वह युवा संन्यासी निःश्वास डालते-डालते सोचता है : 'रात को बरसात आएगी तो हमारा क्या

होगा ? भगवान ऐसे हैं ?' ऐसी फरियाद से दिल में होली जलाकर सो गया । सुबह वह वृद्ध संन्यासी से कहता है : ''महाराज ! झोपड़ा तो टूट गया है, अब क्या करना है ?''

वृद्ध संन्यासी खामोश रहा तथा आकाश की ओर निहारते हुए सोचने लगा : 'शिवोऽहम्... सच्चिदानंदोऽहम्... आनन्दोऽहम् । मैं मुक्त आत्मा हूँ... मैं नित्य हूँ । शरीर और वस्तुएँ अनित्य हैं । झोपड़ा बना और टूट गया लेकिन मैं कभी बनता-बिगड़ता नहीं हूँ । मैं अमर हूँ । हे प्रभु ! तेरी कृपा से ही मुझे यह ज्ञान हुआ है ।'

ऐ इन्सान ! तू अपने दिल को मत बिगाड़ना क्योंकि दिल में दिलबर खुद बैठा है । तू हताश, निराश मत होना । तू हार मत जाना । हमेशा उत्साह के गीत गाना ।

वह प्रत्येक परिस्थिति में परमात्मा की कृपा का अनुभव करके आनंद से जीवन बिताता है, जबकि युवा संन्यासी फरियाद के विचार करके दुःखी होता है ।

जब भी दुःख-विघ्न-बाधा के विचार आवे, तब दुःखी या भयभीत नहीं होना । दुःख-विघ्न-बाधा उस समय प्रभावशाली दिखते हैं लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता है, त्यों-त्यों दुःख-विघ्न-बाधा प्रभावहीन हो जाते हैं । हमारे जीवन में कितने ही दुःख के प्रसंग आये होंगे लेकिन अभी देखें तो वे याद भी नहीं आते । सात वर्ष पूर्व जो दुःख आया था, उस समय वह बड़ा भारी लगता था । पाँच दिन बाद थोड़ा हल्का हो गया और सात वर्ष बाद तो याद भी नहीं आता । वैसे कितने ही दुःख आकर चले गये, किन्तु उनका प्रभाव सदा नहीं रहता । अतः दुःख के विचार करके दुःखी नहीं होना चाहिये ।

भजन करते हो, साधना की राह पर जाते हो और जीवन में विशेष परिवर्तन कुछ दिखे नहीं, फिर भी ध्यान-भजन नहीं छोड़ना चाहिये ।

सुख सपना, दुःख बुलबुला दोनों हैं मेहमान ।
दोनों गुजर जाएँगे सोऽहम् को पहचान ॥

हम क्या करते हैं ? बीते हुए दुःख को याद करके वर्तमान की शांति नष्ट कर देते हैं ।

मान लो, रात को पेट में दर्द हुआ या नींद नहीं आई तो सुबह रोता चेहरा लेकर कुटुम्बियों के सामने फरियाद करके, उनके आनंद में बाधा पहुँचाकर उनकी सुबह नहीं बिगाड़ो ।

कितनी ही बहनें अपने पति या कुटुम्बी भोजन कर रहे हों तब परोसते समय ही फरियाद व चिन्ता के विचार परोसती हैं कि 'लड़का स्कूल नहीं गया... शिक्षक का ठपका सुनना पड़ा... आम के फल अच्छे नहीं थे... फालतू पैसे बिगाड़े... टेलिफोन का बिल इतना आया... बिजली का बिल इतना आया...' आदि-आदि । ऐसी बातों से भोजन का रस चिन्ता और अशांति में रूपान्तरित होगा । अतः चाहे कैसी भी प्रतिकूलता आई हो, भोजन के दस मिनट पहले से लेकर दस मिनट बाद तक व भोजन करते समय फरियाद और चिंता के विचार करो नहीं, सुनो नहीं और सुनाओ भी नहीं ।
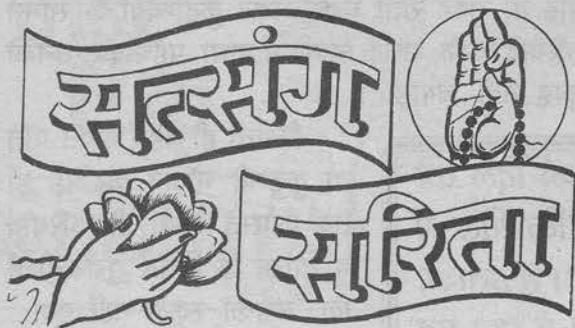
ऐ इन्सान ! तू अपने दिल को मत बिगाड़ना क्योंकि दिल में दिलबर खुद बैठा है । तू हताश, निराश मत होना । तू हार मत जाना । हमेशा उत्साह के गीत गाना । हजार-हजार असफलताओं में भी तू घबराना मत । तू धीरे-धीरे ही सही लेकिन सन्मार्ग में एक-एक कदम आगे बढ़ाते ही रहना... सफलता तेरा इन्तजार करती मिलेगी ।

सद्गुरुओं की वाणी तुम्हें देती है पैगाम ।
सफलता के शिखरों पर लिख दो अपना नाम ॥
आए भी तूफाँ वीरों तो पीछे न रखना कदम ।
कर्म करो और आगे बढ़ो साधन पथ पर अविराम ॥

हम चट्टान को हजार हथौड़े मारें, फिर भी न टूटे और हम हताश होकर लौट जाएँ । इतने में दूसरा आदमी आकर एक हथौड़ा मारे वह टूट जाती है तो

(शेष पृष्ठ १५ ऊपर...)

सत्संग की महिमा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

श्रीमद्भागवत में आता है कि भगवान रसस्वरूप हैं । अत: अपने चित्त में उस रसस्वरूप परमात्मा के प्राकट्य के लिये भगवान के नाम का जप, ध्यान, कीर्तन, स्मरण करना चाहिये । जिसका ध्यान करने से हृदय में दिव्य गुण स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाते हैं ऐसे भगवन्नाम का जप, कीर्तन, स्मरण करने से पाप, अहंता-ममता, राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि दुर्गुण एवं समस्त दु:ख नष्ट हो जाते हैं ।

मनुष्य के इक्कीस जन्मों के पुण्यों का उदय होता है तब संत समागम ठीक ठीक होता है । जीव पर ईश्वर की असीम कृपा होती है, तभी उसे महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त होता है ।

भगवान शंकर पार्वतीजी से कहते हैं :

गिरिजा संत समागम सम और न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होई सो गावहिं बेद पुरान ॥

एक संत ने कहा था कि मनुष्य के इक्कीस जन्मों के पुण्यों का उदय होता है, तब संत-समागम ठीक-ठीक होता है । पुण्य उदय होते हैं तो धन, यश और आरोग्यता मिलती है । पुण्य थोड़े और जोर पकड़ें तो धार्मिकता मिलती है लेकिन जब पुण्यों का पुंज इकट्ठा होता है तब हमें सत्संग और संत-समागम मिलता है ।

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।

हनुमानजी जब विभीषण से मिले तब विभीषण का हृदय छलक आया और वे कहने लगे :

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता ।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥

इस जीव पर ईश्वर की असीम कृपा होती है, तभी उसे महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त होता है जिससे निश्चय ही यह संसार-समुद्र गोपद जैसा हो जाता है और सत्संग-प्राप्ति के कारण परमतत्त्व में विश्रांति भी मिलती है । इसलिये तुलसीदासजी ने कहा है :

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध ।
तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध ॥

२२.५ मिनट की एक घड़ी होती है । आधी घड़ी अर्थात् ११.२५ मिनट और उस आधी में भी आधी घड़ी के लिये भी महापुरुषों का संग मिल जाए तो करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं ।

कबीरजी कहते हैं :

सत्संग की आधी घड़ी
सुमिरन बरस पचास ।
बरखा बरसे एक घड़ी
अरट फिरे बारों मास ॥

पचास वर्ष के मनमाने सुमिरन करने से भी ब्रह्म परमात्मा की इतनी समझ नहीं मिलती जितनी सत्संग की आधी घड़ी में हीं मिल जाती है ।

जैसे गाय सुबह से शाम तक अरण्य में, रास्ते में फिरती हुई सूखा चारा चबाती है और शाम होते ही बछड़े को देखकर उसके पूरे शरीर में से दूध नियत स्थान पर आ जाता है, वैसे ही पूर्व जन्म में एवं इस जन्म में संतों ने साधन-भजन करके, ऋषियों ने हिमालय की कन्दराओं में, गंगा के शीतल तट पर या गिरि-गुफाओं में साधना करके जो अनुभव पाये हैं, उपनिषद्, भागवत, रामायण आदि शास्त्रों में से जो कुछ पाया और अन्तर्यात्रा की है, सत्संग में साधक रूपी बछड़े को देखते ही गाय की तरह संत तमाम प्रकार का अनुभव अपनी वाणी द्वारा साधक के सम्मुख प्रकट कर देते हैं और हमें श्रोत्र द्वारा बिना परिश्रम किये मुफ्त में

सुनने को मिल जाता है ।

संत अर्थात् जिनके जन्म-मरण का अन्त हो गया हो, जिनकी इच्छा और अहंकार का अन्त हो गया हो, जिनके हृदय में आत्मा-परमात्मा की अपरोक्ष अनुभूति हो गई हो, उन्हें संत कहते हैं ।

जो शास्त्रों में लिखा हुआ पढ़कर सुनावे, उसे पंडित कहते हैं । पंडित शास्त्रों के पीछे-पीछे चलते हैं लेकिन शास्त्र जिनके पीछे-पीछे चलते हैं, उन्हें संत कहते हैं, परमात्मा कहते हैं । ऐसे महापुरुष सहज में जो बोलते हैं, वह शास्त्र हो जाता है ।

पंडित शास्त्रों के पीछे-पीछे चलते हैं लेकिन शास्त्र जिनके पीछे-पीछे चलते हैं, उन्हें संत कहते हैं, परमात्मा कहते हैं ।

सत्संग भी पाँच प्रकार का होता है : जिन्होंने सत्यस्वरूप आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार किया हो, जिनकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि में सत्यबुद्धि न हो और जिनकी प्रज्ञा सत्यस्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित हो गई हो, ऐसे शुकदेवजी महाराज, ज्ञानेश्वर, एकनाथ व तुलसीदासजी महाराज तथा राजा जनक आदि के श्रीमुख से जो वचन निकलते हैं, वह प्रथम प्रकार का सत्संग कहलाता है ।

महान् शुभ संस्कारों के संग्रह से ही महापुरुषों का संग मिलता है । ऐसे सत्संग का फल है संसार के जन्म-मरण से सदा के लिये छूट जाना ।

ऐसे अनुभवसम्पन्न महापुरुषों के श्रीचरणों में बैठकर श्रद्धा-भाव से, पवित्र बुद्धि द्वारा उनके वचनों को सुनकर, यादकर जो दूसरों को सुनाते हैं, वह दूसरे प्रकार का सत्संग कहलाता है ।

उन अनुभवसम्पन्न महापुरुषों की वाणी से जो शास्त्र बनते हैं, उनका पठन, मनन व अनुसरण करके किया जानेवाला सत्संग तीसरे दर्जे का होता है ।

इन शास्त्रों अथवा पुस्तकों में लिखी युक्तियों को किसी कथाकार या भक्त से सुनकर उनका मनन करके, उन युक्तियों तक हमारी गति हो जाना, यह चौथे प्रकार का सत्संग है ।

महापुरुषों के ग्रंथ किसी योग्य वक्ता द्वारा सुनने को मिलें और इनके द्वारा ही समझ में आ जावे, इस तरह कथाएँ, भजन कीर्तन आदि करना, पाँचवें दर्जे का सत्संग कहलाता है ।

इनमें से प्रथम प्रकार का सत्संग सर्वश्रेष्ठ माना गया है लेकिन यह भगवान की कृपा से ही मिलता है । उसके लिये भी बहुत साधना करनी पड़ती है क्योंकि महापुरुषों का संग प्राप्त होना साधारण नहीं, बड़े सौभाग्य की बात है ।

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।
सतसंगति संसृति कर अंता ॥

महान् शुभ संस्कारों के संग्रह से ही महापुरुषों का संग मिलता है । ऐसे सत्संग का फल है संसार के जन्म-मरण से सदा के लिये छूट जाना । महात्माओं के संग से जैसा लाभ होता है, ऐसा लाभ संसार के किसी भी संग से नहीं मिल सकता है ।

महापुरुषों को पहचानने की युक्ति यह है कि जैसे बर्फ के समीप जाने से बर्फ का प्रभाव पड़ता ही है, वैसे ही महापुरुषों के नजदीक जाने पर उनका भी प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है । जिस तरह सिपाही को देखने से सरकार की याद आती है, उसी प्रकार भगवान के भक्तों के दर्शन से भगवान की याद आती है । जिनका संग करने से हममें दैवी गुण आते हों, जिनके साथ वार्तालाप करने से, दर्शन से, स्पर्श से आत्मा का कल्याण होता हो, हममें भक्त अथवा गुणातीत पुरुष के लक्षण आने लगते हों तो समझना चाहिये कि वे महापुरुष हैं ।

ऐसे महापुरुषों के दर्शन, सत्संग, स्पर्श और वार्तालाप से पापों का नाश तथा दुर्गुण-दुराचारों का अभाव होकर सद्गुण-सदाचार आते हैं । अज्ञान का नाश होकर हृदय में ज्ञान आता है, जिनसे हमें सहज में भगवद्-प्राप्ति हो जाती है । हमारे अनमोल मानव जीवन की सार्थकता इसीमें है कि ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के श्रीचरणों में हम अपना तन-मन और धन न्योछावर कर दें ।

गोस्वामी तुलसीदासजी सत्संग का महत्त्व बताते

हुए कहते हैं :

बिनु सतसंग न हरिकथा ते बिनु मोह न भाग ।
मोह गए बिनु राम पद होई न दृढ़ अनुराग ॥

सत्संग के बिना हरिकथा नहीं मिलती, हरिकथा के बिना मोह का नाश नहीं होता और मोह का नाश हुए बिना भगवान में दृढ़ प्रेम नहीं होता ।

साधारण प्रेम पाने के लिये अनेक उपाय हैं लेकिन दृढ़ प्रेम के लिये मोह को मिटाना पड़ता है अन्यथा भगवान की प्राप्ति नहीं होती है । भगवान मिलते हैं प्रेम से और प्रेम सत्संग से प्राप्त होता है । अत: मनुष्य को सत्संग के लिये विशेष प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

हमारे अनमोल मानव जीवन की सार्थकता इसीमें है कि ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के श्रीचरणों में हमारा तन-मन और धन न्योछावर कर दें ।

सत् अर्थात् परमात्मा और संग अर्थात् प्रेम, यानी परमात्मा में प्रेम । यह सर्वश्रेष्ठ सत्संग है । आत्मदर्शन किये हुए महापुरुषों के साथ रहना ही सर्वोत्तम सत्संग है । संत-महापुरुष ईश्वररूप माने जाते हैं । तभी तो उनके सत्संग के सामने स्वर्ग भी तुच्छ लगता है ।

जो सत्संग नहीं करता वह कुसंग अवश्य करता है । जो सत्कर्म नहीं करता, वह कुकर्म अवश्य करता है और जो ईश्वरपरायण जीवन नहीं बिताता वह शैतान-सा जीवन अवश्य गुजारता है ।

तुलसीदासजी सत्संग की महिमा गाते हुए कहते हैं :

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

स्वर्ग और मुक्ति के सुख को तराजू के एक पलड़े में रखें और दूसरे पलड़े में क्षणमात्र के सत्संग को रखें तो स्वर्ग और मुक्ति का सुख मिलकर भी एक क्षण के सत्संग के सुख की बराबरी नहीं कर पाएगा ।

अनेक लोगों की ऐसी अवधारणा है कि हमने क्या पाप किये हैं जो हम सत्संग सुनें ? हमने पाप नहीं किये हैं तो हम सत्संग में क्यों जावें ?

अरे भैया ! जब तक पापों का जोर चलता है तब तक सत्संग में रुचि होती ही नहीं है । हम सत्संग में जायेंगे तभी तो शनैः शनैः हमारे पाप कम होंगे, ज्यों-ज्यों पाप कम होंगे, त्यों-त्यों अज्ञान मिटेगा, अज्ञान मिटते ही आत्मज्ञान होगा और आत्मज्ञान होते ही जीवन जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाएगा ।

सत्संग निर्धन, धनवान, विद्वान्, धर्मात्मा, पापात्मा, भक्त और योगी सबके लिये आवश्यक है । भगवान शंकर और पार्वतीजी अगस्त्य ऋषि के आश्रम में सत्संग सुनने के लिये जाते थे । भगवान रामचन्द्रजी भी गुरु वशिष्ठजी के चरणों में बैठकर सत्संग सुनते थे और श्रीकृष्ण भी सांदीपनि के आश्रम में रहकर सेवा करते और सत्संग सुनते थे ।

जो सत्संग नहीं करता वह कुसंग अवश्य करता है । जो सत्कर्म नहीं करता, वह कुकर्म अवश्य करता है और जो ईश्वर-परायण जीवन नहीं बिताता वह शैतान-सा जीवन अवश्य गुजारता है । जिसे ईश्वर में प्रीति नहीं होती वह नश्वर से प्रीति करता है और नश्वर की प्रीति हमें विनाश की ओर ले जाती है । फिर बार-बार जन्मना और बार-बार मरना पड़ता है । यदि ईश्वर में प्रेम है तो उसके शाश्वत होने से हमारी यात्रा शाश्वत की ओर हो जाती है ।

मनुष्य की जैसी रुचि होती है, वहाँ पहुँच जाता है । शराबी शराबखाने में पहुँच जाएगा और चरस पीनेवाला सुलफावाले के पास पहुँच जाएगा । इसी प्रकार मरने के बाद जहाँ जीव की प्रगाढ़ रुचि होगी वहाँ, वैसे वातावरण में वह जन्म लेता है । अतएव हमारे जीवन का समय अवांछनीय रुचि में, अवांछनीय प्रवृत्ति में, अवांछनीय सुखों में और आकर्षणों में न बीते ।

सद्गुरु, सत्शास्त्र, वेद, उपनिषद् और गीता का जहाँ संकेत है, उस ओर हमारी रुचि बढ़ती रहेगी, हमारा विवेक जगता रहेगा तो हम चाहे कितने भी पतित होंगे फिर भी हमें अपनी रुचि के अनुसार वातावरण मिलता रहेगा । अतः कौन-सी रुचि हमारे लिये हितकर है इस बात को समझने के लिये हमारे जीवन में सत्संग की बहुत आवश्यकता है ।

बिनु सतसंग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

सत्संग बिना विवेक नहीं होता, सत्संग बिना यह पता नहीं चलता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? क्या शाश्वत है और क्या नश्वर ? मन में जैसा आता है, वैसा ही कार्य करते रहते हैं । जीवन का कोई शाश्वत उद्देश्य दृष्टि के समक्ष नहीं रखते । जीवन का उद्देश्य महान् बनाने की समझ आती है सत्संग से, इसलिये जीवन में सत्संग की नितान्त आवश्यकता है । सत्संग मानव जीवन का कल्पवृक्ष है ।

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों एवं एजेन्ट बन्धुओं से अनुरोध

(१) 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता के लिए नये सदस्यता शुल्क के अनुसार भेजे गये मनीऑर्डर/ड्राफ्ट ही स्वीकार किये जाएँगे, पुरानी दर के नहीं । सदस्यता शुल्क के नये दर इस प्रकार हैं : भारत, नेपाल व भूटान में **वार्षिक :** द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. ३०. मासिक संस्करण हेतु : रू. ५०. **आजीवन :** द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. ३००. मासिक संस्करण हेतु : रू. ५०० (२) अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराते समय मनीऑर्डर फार्म पर 'संदेश के स्थान' पर 'ऋषि प्रसाद' के लिफाफे पर आया हुआ आपके पते वाला लेबल चिपका दें । (३) 'पाने वाले का पता' में 'ऋषि प्रसाद सदस्यता हेतु' अवश्य लिखें । (४) पते में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सूचना प्रकाशन तिथि से एक माह पूर्व भिजवावें अन्यथा परिवर्तन अगले अंक से प्रभावी होगा । (५) जिन सदस्यों को पोस्ट द्वारा अंक मिलता है उनको विनंती है कि अगर आपको अंक समय पर प्राप्त न हो तो पहले अपनी नजदीकवाली पोस्ट ऑफिस में ही पूछताछ करें । क्योंकि अहमदाबाद कार्यालय से सभी को समय पर ही अंक पोस्ट किये जाते हैं । पोस्ट ऑफिस में तलास करने पर भी अंक न मिले तो उस महीने की २० तारीख के बाद अहमदाबाद कार्यालय को जानकारी दें । (६) 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय से पत्रव्यवहार करते समय कार्यालय के पते के ऊपर के स्थान में संबंधित विभाग का नाम अवश्य लिखें । ये विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं :

(A) अनुभव, गीत, कविता, भजन, संस्था समाचार, फोटोग्राफ्स एवं अन्य प्रकाशन योग्य सामग्री 'सम्पादक-ऋषि प्रसाद' के पते पर प्रेषित करें । **(B)** पत्रिका न मिलने तथा पते में परिवर्तन हेतु 'व्यवस्थापक-ऋषि प्रसाद' के पते पर संपर्क करें । **(C)** साहित्य, चूर्ण, कैसेट आदि प्राप्ति हेतु 'श्री योग वेदान्त सेवा समिति के पते पर संपर्क करें । **(D)** साधना संबंधी मार्गदर्शन हेतु 'साधक विभाग' पर लिखें । **(E)** स्थानीय समिति की मासिक रिपोर्ट, सत्प्रवृत्ति संचालन की जानकारी एवं समिति से संबंधित समस्त कार्यों के लिये 'अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति' के पते पर लिखें। **(F)** स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त प्रकार के पत्रव्यवहार 'वैद्यराज, सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सूरत (गुजरात) के पते पर करें । (७) आप जो राशि भेजें वह इन विभागों के मुताबिक अलग-अलग मनीऑर्डर या ड्राफ्ट से ही भेजें । अलग-अलग विभाग की राशि एक ही मनीऑर्डर या ड्राफ्ट में कभी न भेजें ।

आपको उठाकर समाधि में रख देंगे ऐसा चमत्कार कर दिखाने की अपेक्षा गुरु से रखना नहीं । आप स्वयं कठिन साधना करो । भूखे आदमी को खुद ही खाना चाहिए ।

- स्वामी शिवानंदजी

रौद्र होली !

शंभो ! बहुत ली खेल अब, होली न ऐसी खेलिये ।
थे एक नाना बन गये, व्यामोह करने के लिये ॥
हैं आप तो चैतन्य हम, सब कर दिये बेचैन हैं ।
जीवित सदा हैं आप तो, निज गण बनाये प्रेत हैं ॥

दाना दिखा, चारा दिखा, पशु तुल्य हैं हम कर दिये ।
हैं आप पशुपति बन गये, हम को चराने के लिये ॥
जो पूजते हैं आपको, वे पेट भर-भर खाय हैं ।
ना पूजते जो आपको, भूखे मरें दुःख पाय हैं ॥

जो धर्म में रत होय हैं, वे धर्म धक्के खाय हैं ।
ऊँचे कभी चढ़ जाय हैं, नीचे कभी गिर जाय हैं ॥
रत होय हैं जो पाप में, वे सर्वथा भय पाय हैं ।
मक्खी बनें मच्छर बनें, गिरते चले ही जाय हैं ॥

बहु वस्तुएँ दी हैं बना, प्रभु भोग करने के लिये ।
आदेश हम को दे रहे हैं, योग करने के लिये ॥
जहाँ भोग्य लाखों वस्तु हों, कैसे वहाँ फिर योग हो ।
नर स्वस्थ कैसे रह सके, तिहुं देह में जब रोग हो ॥

शिशु आय जिस दिन गर्भ में, यम साथ ही में आय हैं ।
रहते सदा ही साथ में हैं, साथ ही ले जाय हैं ॥
सिर मृत्यु जिसके हो खड़ा, सो चैन कैसे पा सके ।
फाँसी चढ़ेगा प्रातः, निद्रा रात कैसे आ सके ॥

खाता चूहे को सर्प है, अरु सर्प न्योला खाय है ।
न्योला बिलाई से बिलाई स्वान से घबराय है ॥
कोई यहाँ निर्भय नहीं, भयभीत सब हैं हो रहे ।
भयमय पिलाकर भांग हम को, आप निर्भय सो रहे ॥

बालकपना खाती तरुणता, ताहि वृद्धा खावती ।
पाता बहुत ही कष्ट बूढ़ा, मृत्यु फिर आ जावती ॥
ऐसी भयानक सृष्टि रचनी, आपको क्या शोभती ।
मारी बहुत पिचकारियाँ, पिचकारी अब मारो मती ॥

मदिरा पिलाकर मोह की, मोहित सभी हम कर दिये ।
तू जीव है, तू देह है, कह कान सब के भर दिये ॥
पूरा अधूरा कर दिया, कर्त्ता किया भोक्ता किया ।
धर शीश कीचड़ का घड़ा, फिर फोड़ डंडे से दिया ॥
जो कुछ किया अच्छा किया, अब तो न होली खेलिये ।
सामीप्य अपना दीजिये, नाहीं नरक में ढेलिये ॥

कच्चे उड़ा सब रंग, पक्के रंग में रंग दीजिये ।
पिचकारी देकर ज्ञान की अज्ञान तम हर लीजिये ॥

भोला ! न कुछ मैंने किया, यह सर्व तव अज्ञान है ।
न देह, नाहीं विश्व, नाहीं जीव नाहीं प्राण है ॥
मैं हूँ अकेला एक ही, तुझमें न मुझमें भेद है ।
हो लीन मुझमें भेद तज, क्यों व्यर्थ करता खेद है ॥

गुरुभक्तियोग

(१) पूरे अन्तःकरण से हृदयपूर्वक गुरु की सेवा करो । किसी भी प्रकार की अपेक्षा से रहित होकर आपके गुरु के प्रति प्रेम रखो । अपनी आय का दसवाँ हिस्सा आपके गुरु को समर्पित करो । गुरु के चरणकमलों का ध्यान करो । इसी जन्म में आपको आत्म-साक्षात्कार होगा । यह साधना का रहस्य है । (२) गुरु की पूजा करने के लिए शिष्य के लिए गुरुवार पवित्र दिन है । (३) जिनको आत्मा विषयक ज्ञान है, शास्त्रों में जो पारंगत हैं, जो तमाम उत्कृष्ट गुणों से युक्त हैं वे सद्गुरु हैं । (४) जिसको आत्म-साक्षात्कार सिद्ध किये हुए गुरु मिलते हैं वह सचमुच तीन गुना भाग्यशाली है । (५) किसी भी प्रकार के फल की अपेक्षा से रहित होकर गुरु की सेवा करना यह सर्वोच्च साधना है ।

- स्वामी शिवानंदजी

(पृष्ठ २४ का शेष.....)

(३) मनावर (म. प्र.) में अमृतवाणी ज्ञानवर्षा : दिनांक : १९ और २० फरवरी १९९६. सुबह ९-३० से ११-३०. दोपहर ३-३० से ५-३०. संत श्री आसारामजी आश्रम, सेमलदा रोड़, वेडी नदी के पास। संपर्क : (०७२९४) ३२३७२, ३२४५५, ३२४३३

(४) शहादा (महा.) में योगवाणी अमृतवर्षा : दिनांक : २२ से २५ फरवरी १९९६. सुबह ९-३० से ११-३० दोपहर ३ से ५ हरिओम नगर, संत गाडगे महाराज आश्रम के पास, तलोदा रोड़ । संपर्क : ३४६०, ३५६१.

(५) सूरत आश्रम में होली शिविर : दिनांक : २ से ५ मार्च १९९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सूरत । संपर्क : ६८५३४१.

प्रश्न : मुझे वर्षों से चक्कर आना, जी घबराना, गैस बनना, डकारें आना आदि व्याधियों ने घेर रखा है। काफी इलाज कराये किन्तु रोग न मिटा। कृपया यथोचित उपचार बतलावें।

- देवीलाल पारीक, रायला रोड़, भीलवाड़ा।

उत्तर : आश्रम की 'जीवन रसायन' पुस्तक सदैव अपने साथ रखकर प्रति घंटे उसका एकाध पेज पढ़कर उन्हीं विचारों में मग्न रहें। चित्रकादिवटी स्पेशल की ३-३ गोली सुबह-शाम भोजन के पूर्व चबाकर खावें तथा रात्रि में प्रतिदिन एरंड के १० ग्राम तेल में २ ग्राम शिवाचूर्ण का सेवन करें।

प्रश्न : विगत ४-५ माह से मेरे पेट की बाँईं ओर शूल की पीड़ा हो रही है, मानो कोई भाला चुभो रहा हो। बेचैन रहता हूँ। खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता है। मैं क्या करूँ ? - रामेश्वर शुक्ल, कानपुर।

उत्तर : आप प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी प्रकृति के अनुरूप तिल का तेल या शुद्ध घी गरम पानी के साथ ४० दिन तक पीवें। भोजन में केवल उबले हुए मूंग ही सेवन करें व बिना कड़ी भूख लगे कुछ भी न खावें। आलू, टमाटर व वातकारक आहार से बचें। मूंग में २ चम्मच संतकृपा चूर्ण तथा एक नींबू का रस निचोड़ लें। रात को सोते समय शिवाचूर्ण १ चम्मच मात्रा में गरम पानी के साथ लें।

प्रश्न : मेरे परिवार में विगत दो माह से सभी खुजली रोग से पीड़ित हैं। बहुत इलाज कराये लेकिन कोई लाभ न हुआ। आपके पास कोई उपचार हो तो बतावें। - मुकेश देशमुख, बालाघाट (म.प्र.)

उत्तर : पवार के बीज के चूर्ण में नींबू का रस मिलाकर उसे खुजली वाले स्थान पर लेप करें। पानी के साथ यह चूर्ण सुबह, दोपहर, शाम को आधा तोला मात्रा में खावें भी। मरिच्यादि तेल की मालिश करें। नीम के काढ़े से स्नान करें एवं आरोग्यवर्धिनीवटी नं. १ की दो-दो गोली पानी के साथ लेवें।

प्रश्न : मेरे पसीने से बहुत दुर्गन्ध आती है। कृपया उपचार बतावें। - विक्रमसिंह, ग्वालियर।

उत्तर : शरीर पर चंदन का लेप करें, नागरमोथ व अमृता मिश्रितचूर्ण, १-१ चम्मच दिन में तीन बार सेवन करें। तला हुआ, पित्तकारक व मिर्च-मसालायुक्त आहार त्यागें। लाभ न होने तक यह चिकित्सा जारी रखें।

प्रश्न : पिछले दो वर्षों से मैं टांसिल से परेशान हूँ। थोड़ी-सी खटाई खाने से भी गला सूज जाता है। फिर पानी पीने में भी परेशानी होती है। अनेक डॉक्टर बदले परन्तु कोई आराम नहीं हुआ। 'ऋषि-प्रसाद' के माध्यम से उपचार बतावें। - आशुतोष शर्मा, इन्दौर।

उत्तर : दाँत पर दाँत रख के मुँह से जोर से श्वास लें और 'हाआ...' करके श्वास को बाहर निकाल दें। नमक के कुनकुने पानी के गरारे करें। दही-दूध-खटाई का सेवन तीन माह तक न करें। सिका हुआ चना व उबले मूंग का सेवन हितकारी।

प्रश्न : मेरी पत्नी की एक आँख से हमेशा पानी गिरता है। डॉक्टरों ने उसकी आँख में नासूर होना बताया है। कृपया इस रोग का निदान प्रकाशित करें। - प्रहलाद वैरागी, मन्दसौर।

उत्तर : रोगी को प्रतिदिन जलनेति करावें। (जलनेति का विवरण आश्रम की पुस्तक 'योगासन' में देख लें।)१५ दिन तक भोजन में केवल उबले हुए मूंग लेवें, त्रिफला गुग्गल की ३-३ गोली सुबह, दोपहर, शाम चबाकर खावें तथा रात्रि में सोते समय गर्म पानी से त्रिफला की तीन गोलियाँ नियमित सेवन करें। आँखें शुद्ध बोरिक पावडर से धोवें।

> *अपने गुरु की पसन्दगी सोच-विचार कर एवं धैर्य से करो। क्योंकि बाद में आप गुरु से अलग नहीं हो सकते। अलग होने में बड़े में बड़ा पाप है।* - *स्वामी शिवानंदजी*

संस्था समाचार

आलंदी : महाराष्ट्र क्षेत्र में आलंदी गाँव (जि. पूना) दिनांक : ३० और ३१ दिसम्बर को पूज्य बापू के सान्निध्य में दिव्य सत्संग समारोह का लाभ लेकर धन्य धन्य हो उठा । महाराष्ट्र क्षेत्र के गाँव-गाँव से, शहर-शहर से आये हुऐ लाख-डेढ़ लाख भक्तजनों ने पूज्य बापू की अमृतवाणी का रसपान किया ।

वहाँ ज्ञानेश्वरजी की कर्मभूमि में ज्ञानेश्वरजी की सातवीं शताब्दी का समापन समारोह भी पूज्यश्री के पावन सत्संग के साथ सम्पन्न हुआ । यहाँ से कुछ ही दूर पिम्परी (पूना) में भी ३० और ३१ दिसम्बर को पूज्यश्री के सत्संग समारोह का आयोजन हुआ था । सुबह दो घंटे पिम्परी में एवं शाम को आलंदी में पूज्यश्री सत्संग का अमृतपान कराते । आलंदी में ज्ञानेश्वरजी की समाधि के मन्दिर में पूज्यश्री कभी गये नहीं थे, उसी मन्दिर के पूजारी को पूज्यश्री के अलौकिक रूप में दर्शन हुए ।

अहमदाबाद : दिनांक : १२ से १५ जनवरी तक आश्रम में आयोजित ध्यान योग साधना शिविर में भारत के अनेक प्रान्तों के एवं विदेशों से भी साधक पूज्य बापू के पावन सान्निध्य में ध्यान की गहराइयों का एवं योग के सूक्ष्म रहस्यों का अनुभव करने आये । इस शुभ अवसर पर गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री श्री सुरेशचन्द्र मेहता ने भी आश्रम में आकर पूज्य बापू से पवित्र प्रेरणा पायी । इस मंगल पर्व पर दिनांक १४ जनवरी को गुजरात राज्य के शहरी विकास मंत्री श्री फकीरभाई वाघेला, पंचायत मंत्री श्री आत्मारामभाई पटेल, अहमदाबाद शहर की मेयर श्रीमती भावनाबहन दवे आदि ने सत्संग और संतसान्निध्य का लाभ लिया । पू. बापूजी से सत्य का अनुसरण करते रहने का आशीर्वाद प्राप्त किया । इसी दिन पूज्यश्री ने सत्संग की १० नई ऑडियो कैसेट का उद्घाटन भी किया, जिनके नाम हैं : (१) परम ध्यान (२) संत की पहेचान (३) लगाओ दम मिटे गम (४) ईश्वर की खोज (५) अष्टावक्र कथा (६) संत की हूँडी (७) ज्योत से ज्योत जगाओ (८) विवेक विचार (९) ज्ञान गंगोत्री (१०) हरिनाम कीर्तन ।

पानीपत : हरियाणा क्षेत्र में ऐतिहासिक नगरी पानीपत में दिनांक : २३ से २८ जनवरी तक दिव्य सत्संग समारोह आयोजित हुआ, जिसमें दिल्ली, पंजाब, हिरयाणा के क्षेत्रों से आये हुए लाखों भाविक भक्तों ने पूज्यश्री की अनुभव सम्पन्न वाणी का लाभ लिया । इस सत्संग समारोह में बच्चों की यादशक्ति बढ़ाने के लिए... उनका जीवन उन्नत करने के लिए उनको तन-मन से सशक्त बनाने के लिए और भविष्य में वे खुद तो संयमी जीवन जियें और आनेवाली पीढ़ी में भी सत्संग्र-सदाचार के संस्कार डालें, इस भावना से पूज्यश्री ने दिनांक २५ को हजारों स्कूली बच्चों को विशेष सत्संग दिया । ठंडी के वातावरण में भी पूज्यश्री के सत्संग में सत्संगियों की भीड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी और अन्त में सत्संग पंडाल भी छोटा पड़ने लगा । पानीपत शहर में जी.टी. रोड़ जहाँ देखो वहाँ अनगिनित स्वागत द्वारों से भरा था । हरियाणा क्षेत्र के गाँव-गाँव से आये हुए ग्रामीण भक्तजन व शहर निवासियों में पू. बापूजी के सत्संग के प्रति अजीबोगरीब उत्साह देखने को मिला ।
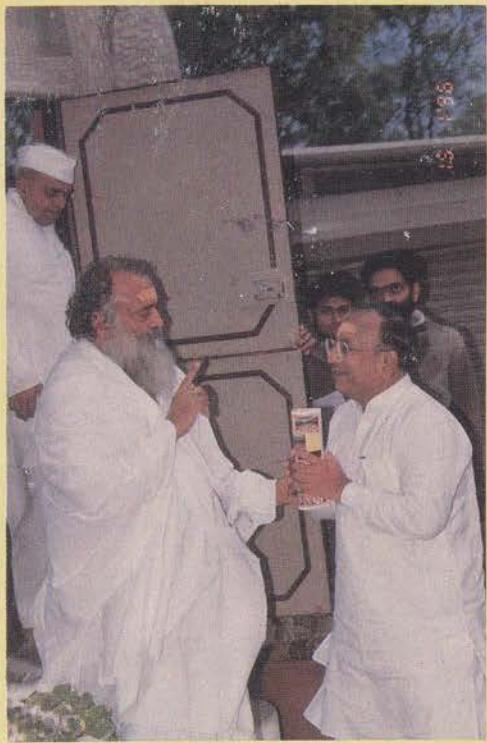
दिनांक : २५ को भाजपा के वरिष्ठ नेता श्री अटलबिहारी बाजपेयी भी पू. बापू के निवास-स्थान पर पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये और पू. बापूजी से सत्संग का प्रसाद ग्रहण किया एवं विचारविमर्श भी किया ।

पू. बापू के अन्य सत्संग-कार्यक्रम

(१) कलकत्ता में गीता-भागवत सत्संग समारोह : दिनांक : ३ से ९ फरवरी १९९६. सुबह ९-३० से १२. दोपहर २ से ४. मोहन बागान ग्राउन्ड के पीछे । संपर्क फोन : २२०६६८९, २२०७६८२
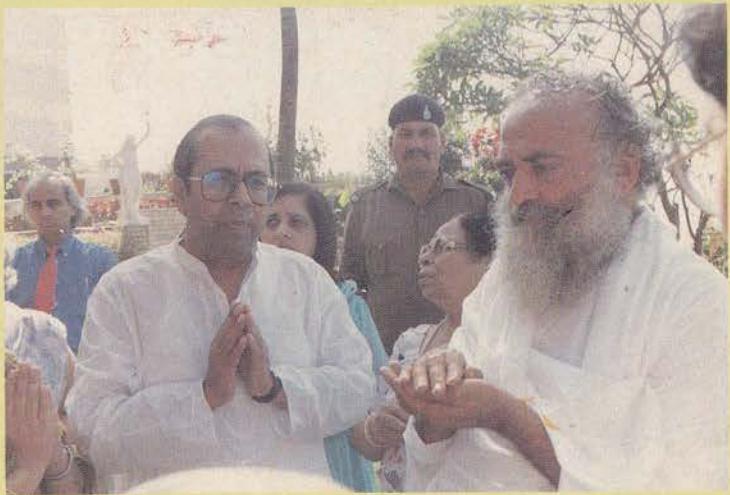
(२) उज्जैन में महाशिवरात्रि महोत्सव वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर : दिनांक : १५ से १८ फरवरी १९९६. जाहिर सत्संग रोज शाम ४ से ६. संत श्री आसारामजी गुरुकुल, मंगलनाथ रोड़। संपर्क : ५५०५५, ५५५५२, ५५०७७.

(शेष पृष्ठ २२ ऊपर...)

गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री श्री सुरेशचंद्र मेहता संत श्री आसारामजी आश्रम में पू. बापू से पावन प्रेरणा पाते हुए।

श्री प्रकाशजी हिन्दूजा एवं हिन्दूजा परिवार पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में धनघड़ी धनभाग महसूस करते हुए।

गुजरात राज्य के शहरी विकास मंत्री श्री फकीरभाई वाघेला, पंचायत मंत्री श्री आत्मारामभाई पटेल, अहमदाबाद शहर की मेयर श्रीमती भावनाबहन दवे सत्संग और संत-सान्निध्य का प्रेम-प्रसाद पाते हुए।

टी सीरीजवाले श्री गुलशन कुमार पूज्यश्री के सत्संग समारोह (मुंबई) में पूज्यश्री का चित्र एवं श्रीगुरुगीता लिये हुए प्रसन्न वदन... भावविभोर...